भगवान महावीर

लेखक :
विराट्

अनुपम प्रकाशन, जयपुर

मूल्य : तीन रुपये
प्रथम संस्करण : 1975
प्रकाशक : अनुपम प्रकाशन, जयपुर-3
मुद्रक : मातृभूमि प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर-3

मुख्यमंत्री,
राजस्थान सरकार

भूमिका

भगवान् महावीर की २५०० वीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में जनता अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करें। भगवान् महावीर के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सिद्धान्त सार्वभौम और सार्वकालिक सिद्धान्त हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि उनके सिद्धान्तों को, विचारों को जीवन में उतारा जाय।

इस संक्रान्ति काल में "भगवान महावीर" पुस्तक का प्रकाशन पाठकों को उनके जीवन, व्यक्तित्व आदि के सम्बन्ध में विहंगम रूप से परिचित करायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इस पुस्तक की भाषा सरल और सहज है और शैली प्रवाह-मयी। मुझे आशा है कि यह पुस्तक जनता में लोकप्रिय सिद्ध होगी।

जयपुर,
दि० १९. १. १९७५

हरिदेव जोशी

अनुक्रमणिका

पूर्व झलक

आज से लगभग ढाई हजार वर्षों पहले की बात है। बिहार में उन दिनों कुमारपुर नामका एक गाँव था। उसी गाँव का एक किसान गाँव के बाहर अपना खेत जोत रहा था। खेत जोतते-जोतते किसान को घर पर कोई काम याद आ गया। उसने सोचा कि खेत तो बाद में जोत लूँगा, पहले घर का काम कर लूँ।

साँझ होने को आ रही थी। किसान अपने बैलों को किसकी निगरानी में छोड़े! इसी बीच उसने देखा कि खेत के पास ही एक साधु ध्यान लगाए बैठा है। किसान को पता नहीं था कि वह साधु कब आ गया और कब ध्यान लगाकर बैठ गया लेकिन उसने सोचा कि इस साधु को कह कर कि वह बैलों को देखता रहे, घर का काम किया जा सकता था।

किसान के खेत के पास ही एक घना पेड़ था। वह साधु उसी पेड़ के नीचे ध्यान लगाए बैठा था।

अपने बैलों का लेकर किसान उस साधु के पास गया और बोला—महात्माजी, जरा मेरे इन बैलों को थोड़ी देर देखना, मैं अभी-अभी घर से आ रहा हूँ।

साधु अपने ध्यान में लगा रहा। किसान ने सोचा कि बात तो साधु से कह ही दी है, वह जरूर ध्यान रखेगा। यही सोचकर किसान अपने बैलों को वहीं छोड़ कर घर आ गया।

जब किसान घर से वापिस खेत पर गया तो उसने देखा कि उसके दोनों बैल कहीं चले गए हैं और वह साधु उसी तरह ध्यान लगाये बैठा है। उसने पूछा—"बाबाजी, मेरे बैल किधर गए?" लेकिन साधु ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सूरज अब छिपने जा रहा था। किसान को अपने बैलों की चिन्ता थी, इसलिए उसने साधु से अधिक बात नहीं की। वह पास के जंगल में अपने बैलों को ढूंढने चला गया।

रात को बड़ी देर तक ढूंढने के बाद भी जब बैल न मिले, तो किसान परेशान होकर घर की ओर चल पड़ा। उसने सोचा, शायद बैल अपने आप ही घर चले गए हों। लेकिन घर आने पर उसे मालूम हुआ कि बैल तो नहीं आये। उसे बड़ी चिन्ता हो गई, आखिर बैल गए तो कहाँ!

रात उसने इसी चिन्ता में बिताई, नींद भी नहीं ले सका अच्छी तरह। अगले दिन तड़के ही वह फिर बैलों

की खोज में निकल पड़ा और सबसे पहले अपने खेत पर हो गया। वहां जाकर वह क्या देखता है कि वह साधु उसी तरह ध्यान लगाए बैठा है और उसके बैल उस साधु के पास आराम से बैठे जुगाली कर रहे हैं।

यह देखकर किसान को क्रोध हो गया। उसने सोचा कि साधु अवश्य ही पाखण्डी है। इसी ने मेरे बैलों को कहीं इधर-उधर भगा दिया था। उसने जोर से कहा—"रे पाखण्डी, तुझे सुनता भी है या नहीं? बता, मेरे बैल तूने कहां छिपा दिये थे?"

साधु तो अपने ध्यान में लीन था। उसने इस बार भी कोई उत्तर नहीं दिया।

अब तो किसान का क्रोध और भी भड़का। उसने कहा—अच्छा ठहर जा, मैं तुम्हारा सारा पाखण्ड दूर करता हूँ।

यह कह कर किसान ने पास ही से एक लकड़ी उठाई और उसे साधु के कानों में ठोकते हुए कहा—ले यह। तू बहरा है न, अब इस पाखण्ड का मजा आ जावेगा।

साधु का ध्यान भंग हुआ। उसके कान से खून टपकने लगा। फिर भी साधु ने किसान को कुछ भी नहीं कहा। यह देखकर किसान चकित हो गया। उसे आश्चर्य हुआ कि साधु कितना धैर्य वाला है, कितना सहनशील है, और क्रोध तो इसे बिल्कुल ही नहीं।

कहते हैं उसी समय इन्द्रदेव प्रकट हो गए थे । उन्होंने किसान को फटकारते हुए कहा—मूर्ख, तुमने जो अपराध किया है, उसके लिए क्षमा मांग । किसान जब संन्यासी से क्षमा मांगकर अपने बैलों के साथ चला गया तो इन्द्र ने साधु से कहा—आपकी तपस्या बड़ी कठिन है । आज्ञा हो तो मैं सदा आपके साथ रहूँ, और इस तरह की जो विघ्न-बाधाएं आयें, उन्हें दूर करता रहूँ ।

इस पर संन्यासी ने कहा—इन्द्र, दूसरों के बल पर तपस्या नहीं की जाती । जो सत्य के मार्ग पर चलते हैं और जो ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उनके रास्ते में इससे भी बड़ी और भयंकर बाधायें आती हैं । मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है । सभी बाधाओं को झेलता हुआ मैं अपने मार्ग पर अडिग रहूँगा ।

वह महान् संन्यासी और कोई नहीं, महावीर स्वामी थे जो जैनधर्म के तीर्थंकर हो चुके हैं और जिन्होंने विश्व को यह संदेश दिया—"सभी प्राणियों को अपने समान समझो किसी जीव को मारो मत; उसे सताओ मत क्योंकि कोई जीव दुःख पाना नहीं चाहता, सभी सुख से जीना चाहते हैं ।"

महावीर का बचपन

महावीर स्वामी के बचपन का नाम था वर्द्धमान। वर्द्धमान शब्द का अर्थ होता है-बढ़ने वाला, बढ़ाने वाला, अर्थात् जो व्यक्ति निरन्तर आगे ही आगे उन्नति करके बढ़ता चले या संसार को उन्नति की ओर बढ़ाता रहे, उसे वर्द्धमान कहते हैं।

इस नाम के पीछे भी एक कहानी है।

बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर जिलेमें आजकल एक छोटा-सा गाँव है—बसाढ़। आजकल जहां बसाढ़ गांव है, वहीं आज से ढाई हजार वर्षों पहले वैशाली नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। उन दिनों वहाँ लिच्छिवी वंश के क्षत्रिय राज्य करते थे। ये लिच्छिवी परम प्रतापी थे। इनके शौर्य और साहस के आगे बड़े-बड़े योद्धा और वीर नतमस्तक हो जाते थे।

उसी वैशाली नगर के समीप ही कुण्डनपुर नाम का एक गाँव या कस्बा था। उसी कुण्डनपुर के राजा थे सिद्धार्थ। राजा सिद्धार्थ का विवाह वैशाली नगर के राजा चेटक की बहिन त्रिशला के साथ हुआ था। वर्द्धमान, जो बाद में चलकर महावीर स्वामी कहलाए, इन्हीं सिद्धार्थ

और त्रिशाला के दूसरे पुत्र थे। बड़े बेटे का नाम था नन्दिवर्द्धन।

जैसा आम तौर पर होता है बड़े या महान् लोगों के जीवन के साथ अनेक रोचक तथा आश्चर्यजनक कथाएँ जुड़ी रहती हैं। वर्द्धमान के जीवन के साथ भी ऐसी अनेक कथाएँ जुड़ी हुई हैं जिनसे पता चलता है कि बचपन में ही 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत के अनुसार इनमें ऐसे लक्षण दिखाई देने लगे थे जिनसे पता चलता था कि यह बालक बड़ा होकर यशस्वी बनेगा।

कहते हैं जब वर्द्धमान माँ त्रिशला के गर्भ में ही थे तो इन्हें ऐसा जान पड़ा कि उनके हिलने-डुलने से मां को कष्ट होता है। इसका परिणाम यह हुआ कि इन्होंने गर्भ में ही निश्चय किया कि वे हिलेंगे-डुलेंगे नहीं। यह निश्चय कर उन्होंने हिलना-डुलना बिल्कुल बन्द कर दिया।

जब वर्द्धमान ने गर्भ में हिलना-डुलना बन्द कर दिया तो मां त्रिशला को भारी चिन्ता हो गई। उन्होंने सोचा कहीं गर्भ का बालक मृत तो नहीं हो गया। मां की इस चिन्ता से वर्द्धमान को भी चिन्ता हो उठी। अब उन्होंने फिर से धीरे-धीरे हिलना-डुलना आरम्भ कर दिया। इससे यह जानकर कि गर्भ में शिशु जीवित है, राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला अत्यन्त प्रसन्न हुए।

शिशु ने सोचा—मां-बाप को मेरे प्रति बड़ा ही प्रेम है; वे मेरे न हिलने-डुलने से ही चिन्तित हो उठते हैं। मुझे ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे मां-बाप को दुःख हो।

इसीलिए गर्भ में ही महावीर ने निश्चय किया कि वे मां-बाप के जीवित रहते संन्यास नहीं लेंगे।

यहां पर शायद कोई यह शंका कर सकते हैं कि गर्भ में पल रहे शिशु को इतना ज्ञान कहां होता है कि वह इतनी बातें सोच सके। यह शंका सही है किन्तु महावीर साधारण शिशु नहीं थे। वे अनेक जन्मों में अच्छे कार्य करके पूर्ण ज्ञानी बन चुके थे और अपने प्राप्त ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाने के लिए ही मानव शरीर में इस पृथ्वी पर आ रहे थे।

महावीर स्वामी का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को आधीरात को हुआ था। उस दिन सोमवार था।

उसी क्षण से राजमहल में उत्सव के बाजे बजने लगे। लगातार दस दिनों तक यह उत्सव चलता रहा। खूब दान-दक्षिणा दी गई।

राजा सिद्धार्थ ने बड़े-बड़े ज्योतिषियों और विद्वानों को बुलाया। सभी बालक के शरीर के लक्षणों को देखकर चकित रह गए। उन्होंने इतने सारे शुभ लक्षण किसी

एक ही बालक में आज तक नहीं देखे थे। विद्वानों और ज्योतिषियों ने राजा सिद्धार्थ से कहा—"महाराज, आपका यह बालक धर्म और यश में जो ख्याति प्राप्त करेगा, वैसी ख्याति किसी को नहीं मिली, न मिलेगी। इस बालक के शरीर के लक्षणों से प्रगट होता है कि यह परम प्रतापी एवं सिद्ध पुरुष होगा। यह बालक संसार में ज्ञान की किरणें बिखेरेगा और सभी प्राणियों को अभय देगा।"

इसके बाद जब नामकरण संस्कार का समय आया तो राजा सिद्धार्थ ने कहा—"जब से यह बालक हमारे कुल में आया है, तब से राज्य के सभी लोग प्रसन्न हैं। प्रजा की खेती और व्यापार में वृद्धि हुई है, राज्य का खजाना भी पहले की अपेक्षा अधिक भर गया है। हमारे राज्य की शक्ति भी बढ़ी है और हर तरह से यह राज्य धन-धान्य से भरपूर होता जा रहा है; अतः मेरा विचार है कि इस बालक का नाम वर्द्धमान रखा जाय।"

राजा सिद्धार्थ की बात सभी विद्वानों एवं दरबारियों को ठीक लगी और बालक का नाम रखा गया वर्द्धमान।

शिशु वर्द्धमान अब मां-बाप का ही नहीं, सभी का दुलारा बन गया। और बालकों की अपेक्षा वर्द्धमान में बचपन से ही ऐसे लक्षण प्रगट होने लगे जिनसे कहा जा सकता था कि यह बालक बड़ा होकर परमप्रतापी और

यशस्वी बनेगा ! वर्द्धमान का शरीर भरा-पूरा और रंग गोरा था। उनके चेहरे पर एक अनूठा तेज चमकता रहता था। उनकी बाहें लम्बी-लम्बी और आँखें बड़ी तथा तेजपूर्ण थीं।

ईसा मसीह आज से 1973 वर्षों पहले हुये थे और महावीर ने उनसे भी 599 वर्षों पहले जन्म लिया था।

महावीर नाम कैसे पड़ा

भगवान महावीर का यह नाम कैसे पड़ा, इसकी भी एक रोचक कहानी है। हम जानते हैं कि जब कोई व्यक्ति ऐसा काम करता है जो साधारण तौर पर दूसरे लोग नहीं कर पाते, तो उसका महत्व दिखानें के लिए लोग उस व्यक्ति के लिए कोई न कोई विशेषण ढूँढ़ लेते हैं। आप सभी जानते हैं कि गांधी जी का नाम मोहनदास कर्मचन्द था, किन्तु उनके मन में दूसरे लोगों के लिए अपार करुणा थी, दया थी, वे संन्यासियों की तरह लंगोटी और एक धोती ही पहनते थे, खाने-पीने में भी बड़ी सादगी रखते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके इन गुणों को देखकर लोगों ने उन्हें महात्मा कहना शुरू कर दिया।

ऐसी ही बात महावीर स्वामी के बारे में भी कही जाती है।

ऐसा कहा जाता है कि बालक वर्द्धमान जब आठ वर्ष का हुआ तो उसमें अनेक लक्षण महापुरुषों के प्रकट हो गए थे। इनमें दो बातें स्पष्ट थीं–साहस और शक्ति तथा ज्ञान।

कहते हैं आठ वर्ष की उम्र में ही राजकुमार वर्द्धमान अपने अन्य ग्रामीण साथियों के साथ गाँव के बाहर खेल खेल रहा था। जैसा कि आजकल भी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों और बिहार में प्रचलित है, बालक पेड़ पर चढ़ने के खेल खेला करते हैं। उन दिनों भी यह खेल प्रचलित था जिसे 'सकुली' कहते थे। संकुली खेल इस प्रकार खेला जाता है कि सभी बालक मिलकर एक पेड़ तय कर लेते हैं। उस पेड़ पर चढ़कर किसी न किसी डाल के सहारे बच्चे धम से नीचे कूद आते हैं और एक निश्चित जगह पर आकर हाथ लगा देते हैं। जो बालक सबसे पहले हाथ लगाये वही विजयी बनता है।

राजकुमार वर्द्धमान यही संकुली खेल खेल रहा था। इधर इन्द्रदेव का दरबार स्वर्ग में लगा था। दरबार में इन्द्र ने अन्य देवों से कहा कि राजा सिद्धार्थ के बेटे के रूप में एक तीर्थंकर ने जन्म लिया है जो भगवान स्वरूप है। वर्द्धमान की प्रशंसा में इन्द्र ने और भी बहुत सी बातें कहीं। इन्द्र की बातों पर एक देव को विश्वास नहीं हुआ। वह चुपके से दरबार से उठा और बाहर जाने लगा।

उसे दरबार से बाहर जाते देख इन्द्र ने पूछा—कहाँ जा रहे हो?

देव ने कहा—देवेन्द्र, आप सिद्धार्थ के बेटे वर्द्धमान की बहुत प्रशंसा कर रहे हैं। मुझे विश्वास नहीं होता। मैं

उसकी परीक्षा लूंगा और तभी कह सकता हूँ कि आपकी बात में कितनी सच्चाई है।

इन्द्र मुस्करा पड़े। वह देव चल पड़ा।

देव वहां आया जहां बालकों के साथ वर्द्धमान संकुली खेल में लगा था। वर्द्धमान की परीक्षा के लिए देव एक सांप बन गया और उसी पेड़ की डाल पर बैठ गया जिस पर बालक चढ़-उतर रहे थे।

खेलते-खेलते एक बालक की दृष्टि जब उस भयंकर सर्प पर पड़ी तो वह डर गया। सबने देखा कि भयंकर काला नाग पेड़ की डाल से लिपटा फुंफकारें मार रहा है। जो बालक पेड़ के ऊपर थे, उन्होंने जब यह सुना तो जहां थे, वहीं से धम-धम करके नीचे कूदे। नीचे वाले बालकों का साहस नहीं हुआ कि वे पेड़ पर चढ़ें।

सबने मिलकर यह तय किया कि इस पेड़ को छोड़ कर दूसरे पेड़ पर खेल शुरू कर देना चाहिए, किन्तु वर्द्धमान को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा—रास्ते में यदि कोई कठिनाई आती है, तो हमें उस कठिनाई को दूर करना चाहिए; रास्ता ही छोड़ देना तो किसी प्रकार की बुद्धिमानी नहीं। इसलिये आओ, हम सभी मिलकर इस काले नाग को ही भगा दें।

इस पर सभी बालक उस सांप पर लकड़ी और पत्थर मारने लगे ताकि वह उस डाल से हट जाय और कहीं

ओर चला जाय, लेकिन सांप भी ऐसा अड़ियल था कि हटना तो दूर, सरकने का ही नाम न ले। वह और भी जोर-जोर से फुँफकारने और फन हिलाने लगा।

अब तो लड़के और भी घरबाये। उन्होंने कहा—वर्द्ध-मान तुम हठ न करो; यह सर्प यहां से जायेगा नहीं, बेकार में ही यदि किसी को काट खायेगा तो लेने के देने पड़ेंगे। इसलिये अच्छा यही है कि हम यहां से चले चलें और किसी दूसरे पेड़ पर खेलें।

बालक वर्द्धमान को साथियों का यह सुझाव पसन्द नहीं आया। अभी उसकी उम्र आठ ही वर्ष की थी और साथियों में कई लड़के इससे अधिक उम्र के थे, किन्तु वर्द्धमान में जो साहस और शक्ति थी, वह दूसरे साथियों में नहीं थी। वर्द्धमान ने कहा—मुझे यह बात कत्तई पसन्द नहीं कि रास्ते में आने वाली कठिनाई से हम डर जायें। अगर यह सांप अपने आप नहीं हटता है, तो लो, इसे मैं पकड़ कर दूर फेंक आता हूं।

यह कह कर बालक वर्द्धमान निर्भय होकर उस पेड़ पर चढ़ने को चला, और इधर सभी साथी चिल्लाने लगे—"वर्द्धमान, खबरदार, पेड़ पर न चढ़ना। भयंकर काला नाग है। राजा सिद्धार्थ पूछेंगे तो हम क्या उत्तर देंगे? मां त्रिशला से क्या कहेंगे। मत जाओ, उधर; मत जाओ। मान जाओ हमारी बात।"

लेकिन वर्द्धमान ने बालकों की एक न सुनी। सुनते भी कैसे! वे तो संसार को यह पाठ पढ़ाने ही आये थे कि रास्ते की विघ्न बाधाओं से भयभीत न होकर मनुष्य को सदैव अपने मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए। एक विद्वान् ने कहा है :

"जो नीच या अधम लोग होते हैं, वे यह सोच कर कोई कार्य ही शुरू नहीं करते कि इसमें बड़ी कठिनाइयाँ आयेंगी। दूसरे मध्यम श्रेणी के लोग होते हैं जो कोई कार्य तो शुरू करते हैं किन्तु जब बीच में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, तो उस कार्य को छोड़ देते हैं। तीसरे प्रकार के लोग वे होते हैं जो उत्तम या श्रेष्ठ कहे जाते हैं और जिनके मार्ग में वार-बार विघ्न आते हैं किन्तु वे अपने लक्ष्य को पूरा करते हैं।"

वर्द्धमान इसी तीसरी कोटि के श्रेष्ठ-उत्तम पुरुष थे जिन्होंने कठिनाइयों के आगे हार मानना सीखा नहीं था। वे साहस करके पेड़ पर चढ़ गए। उन्हें आता देख साँप बना देव डराने के लिए और जोर-जोर से फुँफकारने लगा। ज्यों-ज्यों सर्प की फुँफकार बढ़ती, वर्द्धमान का साहस भी बढ़ता जाता। अन्त में वे उस डाल तक पहुंच गए जहाँ सांप लिपटा था। आपने बड़ी फुर्ती और शक्ति से साँप के फन को पकड़ लिया। दूसरे हाथ से उन्होंने साँप की पूंछ पकड़ ली और उसे पकड़े-पकड़े धम से पेड़ से नीचे आ कूदे।

उनके इस अलौकिक साहस को देखकर सभी लड़के विस्मित रह गए। लड़कों ने कहा–"इस सांप का फन कुचल कर इसे मार डालें, ताकि यह फिर कभी परेशान न करे।" वर्द्धमान को उस सांप से कोई वैर नहीं था। वे क्षमा और अहिंसा के अवतार बनकर आये थे। उन्होंने कहा–"नहीं; किसी जीव को सताना अनुचित है। सांप हमारे रास्ते में आ गया था, अब मैं इसे रास्ते से दूर कर देता हूँ।"

यह कहकर वर्द्धमान ने उस सांप को दूर जंगलों में छोड़ दिया।

लड़के फिर से खेलने लगे किन्तु उन्होंने खेल बदल लिया। अब वे त्रिदुसक नाम के खेल में लग गए। यह खेल दो लड़कों के बीच खेला जाता है। इसका नियम यह होता है कि लड़के किसी एक पेड़ को तय करते हैं। दो खेलने वाले लड़कों में जो पहले उस पेड़ के हाथ लगा देता है, वह जीत जाता है। इस खेल में जीतने वाला लड़का हारने वाले की पीठ पर सवारी करता है।

सांप बने देव को वर्द्धमान ने दूर तो फेंक दिया किन्तु अभी उसे पक्का विश्वास नहीं हो पाया था कि सचमुच वर्द्धमान एक दिव्य पुरुष और तीर्थंकर हैं। उसने एक बार फिर परीक्षा लेनी चाही।

अबकी वार वह गाँव का एक लड़का बन कर आया और सभी लड़कों के साथ वह भी त्रिदुसक खेल खेलने लगा। खेलते-खेलते एक बार वर्द्धमान के साथ वह पेड़ को हाथ लगाने चला। वर्द्धमान ने तेजी से दौड़कर तय किये हुए पेड़ को छू दिया। वह लड़का पीछे रह गया। अब नियम के अनुसार उसे वर्द्धमान को अपनी पीठ पर चढ़ाकर सवारी करानी थी।

वह देव चाहता ही यही था। जब वर्द्धमान उस की पीठ पर चढ़े तो थोड़ी दूर चलकर देव ऊँचा उठने लगा। सभी लड़के इस दृश्य को देख कर चकित रह गए। वह लड़का पेड़ों से भी ऊंचा हो गया और अभी ऊपर ही उठता जा रहा था। वर्द्धमान उसकी पीठ प्र पेड़ों से ऊंचे उठ गए।

इस दृश्य को देखकर सभी लड़के दंग रह गए। अब भला वर्द्धमान कैसे उतरें! इधर खूब ऊँचाई पर उस देव की पीठ पर बैठे वर्द्धमान ने सोचा-'निश्चित रूप से यह कोई मायावी दानव है। इसे इसकी धूर्तताका मजा चखाना चाहिए। यह विचार कर वर्द्धमान ने उसकी पीठ पर ऐसा घूसा मारा कि उसकी पीठ धरधरा कर टूटने लगी। देव को लगा जैसे किसी ने सैकड़ों मन भारी पत्थर से उसकी पीठ चूर-चूर कर दी हो। वह लटक पड़ा। वर्द्धमान नीचे उतरे।

इसके बाद देव अपने असली रूप में आ गया। उसे वर्द्धमान की शक्ति और साहस का परिचय मिल गया था। देव ने हाथ जोड़ते हुए कहा—वर्द्धमान, सचमुच ही आप शक्ति और साहस से भरपूर हैं। आप वीर ही नहीं, महावीर हैं।

कहते हैं तब से वर्द्धमान को सभी महावीर कहने लगे और उनका यही नाम प्रसिद्ध हो गया।

अवतारों तथा दिव्य पुरुषों के जीवन से यह पता चलता है कि बचपन से ही वे ऐसे कार्य करते रहे जिनसे दूसरों का भला हो। श्रीकृष्ण के बारे में भी प्रसिद्ध है कि उन्होंने एक तालाब में पड़े विषधर को मार कर लोगों को राहत पहुँचाई थी क्योंकि उस भयंकर सर्प के डर से न तो कोई मनुष्य, न कोई जानवर ही उस तालाब के जल का उपयोग कर सकता था। उनके बारे में भी यही कहावत है कि खेलते समय जब उनकी गेंद तालाब में जा पड़ी तो उसे निकालने के लिए उन्होंने विषधर का काम तमाम किया था। बचपन में ही पूतना नामक राक्षसी का वध भी उन्होंने किया था जो औरत बनकर उन्हें दूध पिलाने आई थी। उसके स्तनों में जहर भरा था। अनेक अन्य राक्षसों का भी वध श्रीकृष्ण ने किया था। श्रीराम के बारे में भी प्रसिद्ध है कि उन्होंने किशोरावस्था में ही कुछ राक्षसों को मारकर और अन्य दूसरे राक्षसों को

डराकर, दूर भगाकर वन में तपस्या करने वाले मुनियों के कष्ट दूर किये थे।

ये सारी बातें यह प्रगट करती हैं कि महान् पुरुषों का जन्म दूसरों के संकट दूर करने के लिए होता है। भगवान महावीर के बचपन की घटनाएँ भी इसी तथ्य को प्रगट करती हैं।

वर्द्धमान के बचपन की घटनाएँ यह प्रकट करती हैं कि वे बड़े ही शक्तिशाली, साहसी और शूरवीर थे। एक अन्य घटना यह प्रगट करती है कि उन्हें ज्ञान प्राप्त करने की जरूरत नहीं थी, वे पूर्ण ज्ञानी के रूप में ही पैदा हुए थे।

जब वर्द्धमान आठ वर्ष के हुए तो उन्हें गुरुकुल में विद्या पढ़ने के लिए भेजा गया। कहते हैं इससे इन्द्र को बहुत आश्चर्य हुआ। वे एक ब्राह्मण का वेश बनाकर आश्रम में पहुँचे और वर्द्धमान से कुछ व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न पूछने लगे। इन्द्र के एक से एक कठिन प्रश्नों के उत्तर वर्द्धमान ने इस सरलता से दिये जैसे उनको सारा व्याकरण जबानी याद हो। यह देखकर आचार्य भी दंग रह गए!

ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र ने आचार्य से कहा—भगवन्, आप इस बालक को क्या शिक्षा देंगे! यह तो स्वयं परम ज्ञानी है।

इस घटना से पता चालता है कि महावीर स्वामी बचपन से ही न केवल विकट साहसी और शूरवीर थे, बल्कि ज्ञान से भी पूर्ण थे।

जैन ग्रंथों में कहा गया गया है कि तीर्थंकर में अपार शक्ति होती है। उनकी शक्ति का व्यौरा इस प्रकार दिया गया है।

१२ सुभट जितनी ताकत	=१ वृषभ
१० वृषभ	=१ अश्व
१२ अश्व	=१ महिष (भैंसा)
१५ महिष	=१ गज (हाथी)
५०० गज	=१ सिंह
२००० सिंह	=१ अष्टापद
१० लाख अष्टापद	=१ बलदेव
२ बलदेव	=१ वासुदेव
२ वासुदेव	=१ चक्रवर्ती
१ लाख चक्रवर्ती	=१ नागेन्द्र
१ करोड़ नागेंद्र	=१ इन्द्र

और असंख्य इन्द्र जितनी शक्ति तीर्थंकर की एक उंगली में।

महावीर नाम पड़ने का एक और कारण बताया जाता है। वीर उसे कहते हैं जो शत्रुओं के साथ निर्भयता से युद्ध करे, उन पर विजय प्राप्त करे; और महावीर वह

हुआ जो बड़े से बड़े शत्रु को जीत ले। सोचना यह है कि मनुष्य का शत्रु कौन है। ज्ञानी लोग कहते हैं कि मनुष्य का असली शत्रु उसके बुरे विचार और भाव हैं। वे विचार हैं–लोभ, घृणा, बदले की भावना, क्रोध, मोह, काम इत्यादि।

यहाँ विचार यह करना है कि शत्रु क्या करता है! आप कहेंगे कि शत्रु हमारा नुकसान करता है, वह हम पर आक्रमण करता है और हमारे प्राण तक ले लेता है। लेकिन प्राण देने से तो बहुत से लोग अमर हो गए हैं। युद्ध के मैदान में शत्रु की गोलियों या शस्त्रास्त्रों से प्राण निछावर करने वालों को सदा से सम्मान दिया जाता रहा है, उनका नाम आज भी आदर के साथ लिया जाता है और अमर हैं।

एक दूसरे शत्रु पर भी विचार करें।

सभी मनुष्य चाहते हैं कि वे सुख से जीयें और दूसरे लोग उनका आदर करें। ऐसा तभी सम्भव है जब कोई व्यक्ति अच्छे काम करे। जो व्यक्ति जितना अच्छा काम करता है, उसका उतना ही अधिक नाम होता है और उतना ही अधिक सम्मान होता है।

अब सोचना यह है कि मनुष्य को अच्छे काम करने से कौन रोकता है! कौन उसे बुरे कार्यों की ओर घसीटता है? बुरा काम करना कोई नहीं चाहता, फिर भी लोग

बुरे काम क्यों करते हैं ? आज संसार में जो मार-काट मची है, लूट-खसोट मची है, उसके पीछे असली कारण क्या है ? क्या कारण है कि लोग न चाहते हुए भी बुरा काम करते हैं ? गीता में अर्जुन ने यही बात श्रीकृष्ण से पूछी:—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं, पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय, बलादिव नियोजित :।

—हे कृष्ण, वह कौन है जो न चाहते हुए भी लोगों को पकड़ पकड़ कर बुरे काम में लगाता है!

इसका उत्तर श्रीकृष्ण ने इस प्रकार दिया था :-

काम एषः क्रोध एषः रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

—हे अर्जुन, क्रोध और काम काम के ये दो शत्रु हैं जो महापापी और परले सिरे के दुष्ट शत्रु हैं। इस बात को अच्छी तरह जान लो। इन दोनों की भूख कभी शान्त नहीं होती। ये ही मनुष्य से बुरे कर्म कराते हैं।

आगे श्रीकृष्ण ने कहा है कि इन्हीं दोनों शत्रुओं ने मनुष्य के ज्ञान को घेर रखा है। जब मनुष्य को इन दो महाशत्रुओं से छुटकारा मिल जाता है तो वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ये दोनों शत्रु मनुष्य की आत्मा को घेरे रहते हैं, इसलिए लोग अपनी आत्मा की आवाज सुन नहीं पाते।

यहाँ पूछा जा सकता है कि आत्मा की आवाज क्या है ? इसके लिए आइए थोड़ा विस्तार से चर्चा करें।

कहा गया है कि हमें प्रथम ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। आँख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा को ज्ञानेन्द्रियाँ कहा गया है। आंख किसी वस्तु को देखती है, नाक गंध बताती है, कान सुनते हैं, जीभ स्वाद बताती है तथा त्वचा बताती है छूने से कि कोई चीज कड़ी है अथवा मुलायम, गर्म है ठण्ढी।

लेकिन ज्ञानेन्द्रियों से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे मन ग्रहण करता है। एक उदाहरण लीजिए। आप खेलते हैं तो कभी–कभी चोट भी लग जाती है, लेकिन उस समय आप खेल में इतने लीन रहते हैं कि चोट का ध्यान ही नहीं रहता कि कब और कहां लगी। बाद में मालूम होता है कि चोट लगी है। इसी तरह मान लीजिए आप कमरे में बैठे हुए कोई रोचक कहानी पढ़ रहे हैं। आप का मन कहानी में लगा है और उधर बिल्ली आकर पास ही रखा दूध पी जाती है, प्याला लुढ़का देती है, लेकिन पीने का और प्याला लुढ़कने का शब्द होते हुए भी आपके मन के कहीं और लगे रहने के कारण आपको सुनाई नहीं देता। एक और उदाहरण लीजिए। आप कुछ पढ़ते हैं लेकिन आपका मन कहीं और की बात सोच रहा है। सोचते-सोचते कोई हंसी की बात

याद आती है और आप हंस पड़ते हैं। अब आपका ध्यान टूटता है और पता चलता है कि पुस्तक के पन्ने तो यों ही पलटते चले गए थे, जो लिखा है और जो कुछ आंखों ने पढ़ा है उसका तो ध्यान ही नहीं।

ऐसा क्यों होता है ?

इसीलिए कि ज्ञान को ग्रहण करने वाला मन है। यदि मन कहीं और लगा हो तो आंख, नाक, कान इत्यादि चाहे उसे कुछ भी सन्देश देते रहें, वह ग्रहण नहीं करता, सुनता ही नहीं।

अब आप कहेंगे कि निश्चित रूप से ही इन्द्रियों से बढ़कर मन है; किन्तु मन से भी श्रेष्ठ है बुद्धि। बुद्धि ही निर्णय करती है कि मन ने जो सोचा है, वह काम करना चाहिए या नहीं। एक उदाहरण लीजिए।

मान लीजिए आप अपने मित्र के कमरे में चले गए। आपने देखा कि उसकी खाट पर दस रुपये का एक नोट पड़ा है। देखते ही आंखों ने मन से कहा और मन में लालच भर आया कि इस नोट को उठा लो। अब बुद्धि कहती है कि कहीं कोई देख ले तो ? इसका रास्ता भी बुद्धि ही साफ करती है। वह कहती है—अभी कोई यहां नहीं है। और जब तक कोई आयेगा तब तक तुम इतनी दूर चले जाओगे कि किसी को पता भी नहीं चलेगा; फिर तुम्हें आते तो किसी ने देखा नहीं है। कोई तुम पर सुबहा

भी नहीं करेगा और दस रुपये मुफ्त में मिल जायेंगे।

इस प्रकार बुद्धि ने सोच–विचार कर मन की बात की पुष्टि कर दी। आप उस नोट को उठाने लगे। तभी आपके भीतर बैठा कोई कहता है–"ठीक है कि कोई देखेगा नहीं, किन्तु इस प्रकार चोरी से दूसरे का नोट उठाना है तो बुरा ही।"

यही अन्तिम आवाज आत्मा की है। आत्मा की आवाज हानि–लाभ नहीं देखती; वह देखती है कि कार्य अच्छा है या बुरा। इसी आत्मा को काम और क्रोध घेरे रहते हैं, उसकी आवाज को ये दोनों शत्रु दबाए रहते हैं। तभी कहा गया है कि काम और क्रोध मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं। जो इन्हें जीत ले, वही ज्ञानी है, वही शक्ति-शाली है, वही वीर है।

स्वामी महावीर ने मनुष्य जाति के इन दोनों शत्रुओं को जीत लिया था। उनके मन में किसी के प्रति क्रोध नहीं था, उनके मन में कोई कामना नहीं थी, इच्छा नहीं थी, सांसारिक सुखों के प्रति कोई रुचि नहीं थी। इन भयंकर शत्रुओं को जीतने के कारण ही वे महावीर कहलाए।

विवाह और संन्यास

हम पहले देख चुके हैं कि किस प्रकार वर्द्धमान अपने माता-पिता का अत्यन्त आदर करते थे और उनकी प्रत्येक इच्छा को पूरा करने को सदैव तत्पर रहते थे। माता-पिता की प्रसन्नता और उनके प्रति अपनी सम्मान-भावना के कारण ही वर्द्धमान ने गर्भ में ही निश्चय किया था कि वे माँ-बाप के जीवित रहते संन्यास नहीं लेंगे। वर्द्धमान जन्म से ही ज्ञानी और संन्यासी थे किन्तु माँ-बाप की प्रसन्नता के लिए जिस तरह उन्होंने उनके जीवन में संन्यास नहीं लिया, उसी तरह उनकी प्रसन्नता के लिए विवाह भी किया था।

जैनधर्म के मानने वाले दो सम्प्रदायों में बँटे हैं—एक को दिगम्बर कहते हैं, दूसरे को श्वेताम्बर। इन दोनों के भेद आगे चलकर स्पष्ट किये जायेंगे। यहां इतना जान लेना पर्याप्त है कि दिगम्बर सम्प्रदाय वाले यह मानते हैं कि वर्द्धमान ने विवाह नहीं किया था, वे बाल-ब्रह्मचारी थे; किन्तु श्वेताम्बर मत वाले मानते हैं कि वर्द्धमान का विवाह हुआ था और उनके एक पुत्री भी थी जिसका नाम प्रियदर्शना था।

श्वेताम्बर मतावलम्बियों के अनुसार वर्द्धमान के विवाह की कहानी इस प्रकार है।

जब राजकुमार वर्द्धमान बाल्यावस्था को पार कर किशोरावस्था में आए, तभी से माँ त्रिशला के मन में उनका विवाह कर एक योग्य बहू को राजमहल में लाने के लिए उतावला हो रहा था। राजकुमार वर्द्धमान जिस तरह शक्ति से भरे थे, उसी तरह उनका रूप भी आकर्षक था; साथ ही उनका स्वभाव इतना अच्छा कि जो कोई मिलता, वह उनके स्वभाव और शालीनता पर मुग्ध हो जाता। जब कोई थोड़ी देर उनसे बातें करता तब तो उनके अथाह ज्ञान को देखकर आगन्तुक चकित हो जाता। सभी आश्चर्य करते कि किसी राजकुमार में इस तरह की शक्ति, शालीनता और ज्ञान का अदभुत सौन्दर्य आज तक देखने में नहीं आया।

माता त्रिशला जब पुत्र की प्रशंसा सुनतीं तो उनका मन बेटे के प्रति प्रगाढ़ स्नेह से भर आता। वे अपने को धन्य मानतीं कि उन्होंने ऐसे यशस्वी पुत्र को जन्म दिया है।

राजकुमार वर्द्धमान जब विवाह के योग्य हुए तो अनेक राजाओं के यहाँ से दूत आये और उनके विवाह का प्रस्ताव रखा। माँ-बाप तो चाहते थे कि शीघ्र ही वर्द्धमान का विवाह हो जाय ताकि बेटा संन्यासी न बने,

किन्तु वर्द्धमान विवाह को एक बन्धन मानते थे। वे हमेशा विवाह के प्रस्तावों को टालते रहे।

किन्तु एक घटना ऐसी हो गई जिसने राजकुमार वर्द्धमान को न चाहते हुए भी विवाह बन्धन में बांध दिया। हुआ यह कि उन दिनों कलिंग देश के महाराजा जितशत्रु ने कुण्ड ग्राम के पास ही अपनी सेना सहित पड़ाव डाल रखा था। उनके साथ उनकी बेटी यशोदा भी थी। राजा सिद्धार्थ ने उनका स्वागत किया और इस प्रकार मिलने-जुलने से जब रानी त्रिशला कि दृष्टि यशोदा पर पड़ी तो वे मुग्ध हो गईं। राजकुमारी यशोदा जितनी रूपवती थी, उतनी ही बुद्धिमान एवं अच्छे स्वभाववाली। त्रिशला देवी ने मनही मन निश्चित कर लिया कि वे यशोदा को अपनी पुत्र-वधु बनायेंगी। लेकिन टेढ़ी खीर थी राजकुमार वर्द्धमान को मनाने की जिन्होंने अभी तक के सभी विवाह-प्रस्तावों को ठुकरा दिया था और जीवन भर विवाह न करने की बात पर दृढ़ रहने की ठान रखी थी।

मन में यशोदा के रूप-गुण को सराहना करती हुई माता त्रिशला ने बेटे से कहा-"वर्द्धमान, मैंने तुम्हारे लिए एक बहुत ही रूपवती, गुणवती कन्या ढूंढ़ ली है। मैं चाहती हूं कि उसे अपनी पुत्र-वधु बनाऊँ।"

राजकुमार वर्द्धमान माँ की बात सुनकर चुप रहे, कुछ बोले नहीं। माँ ने फिर कहा-बोलते क्यों नहीं बेटे!

वह कन्या किसी छोटे-मोटे घराने की नहीं है, कलिंग देश की राजकुमारी है।

अब राजकुमार से नहीं रहा गया। उनका तो मन सदा से ही विवाह के विरुद्ध था। बोले-मां, सच्ची बात तो यह है कि मैं विवाह करूंगा ही नहीं।

बेटे की बात से मां सन्न रह गई। वे जानती तो थीं कि वर्द्धमान ने अभी तक विवाह के सारे प्रस्तावों को ठुकरा दिया है लेकिन उन्हें यह विश्वास नहीं था कि जब वे जोर देकर विवाह की बात कहेंगी तो भी वर्द्धमान उनकी बात नहीं मानेंगे।

कुछ आश्चर्य और कुछ दुःख भरे स्वर से मां ने पूछा—"ठीक है, तुम विवाह नहीं करोगे, लेकिन इसका कुछ कारण भी होगा।"

वर्द्धमान ने कहा—सच्ची बात यह है मां, कि मैंने तय किया है कि संसार के लोगों के दुःख दूर करूंगा। इसके लिए मुझे घरबार छोड़ना पड़ेगा, संन्यास लेना पड़ेगा, और जब एक दिन संन्यास लेना ही है तो शादी-ब्याह के झंझटों में अपने को क्यों डालूं?

त्रिशलादेवी को बेटे की बात से दुःख भी हुआ और प्रसन्नता भी। प्रसन्नता इस बात की कि उनका बेटा संसार के प्राणियों का दुःख दूर करेगा, और खिन्नता इस बात

की कि पुत्र-वधू से राजमहल की शोभा नहीं बढ़ा पायेंगी। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। दृढ़ निश्चय के स्वर में कहा—तुम जब संन्यास लोगे, तो संन्यास ले लेना। तुम्हें सारे संसार के दुःख की चिन्ता है; मां के हृदय को नहीं देखते। आखिर तुम ब्याह नहीं करोगे तो इस राज्य का क्या होगा ? राजमहल का अंधेरा कैसे दूर होगा ?

उस समय यद्यपि राजकुमार वर्द्धमान ने मां से कहा था कि संसार की सभी वस्तुएं नष्ट होने वाली हैं, इसलिये राज-पाट की चिन्ता व्यर्थ है, किन्तु कहा जता है कि बाद में उन्होंने मां के आग्रह से उनका मन रखने के लिए विवाह का प्रस्ताव मान लिया था।

इस प्रकार राजकुमार वर्द्धमाव का विवाह कलिंग देश की राजकुमारी यशोदा के साथ हुआ था और उनके एक पुत्री हुई जिसका नाम रखा गया प्रियदर्शना।

यद्यपि राजकुमार वर्द्धमान ने गर्भ में ही निश्चय किया था कि वे माँ–बाप के जीवित रहते संन्यास नहीं लेंगे किन्तु विवाह हो जाने के बाद उनके मन में जल्दी से जल्दी संन्यास लेने का विचार जोर पकड़ने लगा। एक बार उन्होंने अपने पिता सिद्धार्थ से यह बात कह भी दी। इस पर पिता ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—मेरे जीवित रहते तुम सन्यास नहीं ले सकते।

पिता के शब्द सुनकर वर्द्धमान चुप रह गए। वे पिता का इतना सम्मान करते थे कि उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकते थे।

जब वर्द्धमान २८ वर्ष के हुए तो उनके माता-पिता ने अनशन व्रत करने का निश्चय किया। राजा सिद्धार्थ जैन धर्म को मानने वाले थे और धर्मानुसार ही सिद्धार्थ और त्रिशला ने अनशन व्रत करके अपने शरीर त्यागे। इसके बाद प्रथा के अनुसार वर्द्धमान के बड़े भाई नन्दि-वर्द्धन गद्दी पर बैठे।

माँ-बाप की मृत्यु के बाद जब बड़े भाई नन्दिवर्द्धन गद्दी पर बैठे तो वर्द्धमान ने पुनः संन्यास लेने की बात चलाई। इस पर बड़े भाई ने उन्हें एक बार फिर रोका—कुछ दिन ठहर जाओ, जल्दी क्या है।

वर्द्धमान इस बार भी रुक गए किन्तु उनका मन संसार की बातों से विरक्त हो चुका था। वे चाहते थे जल्दी से जल्दी संन्यास ले लेना, इसलिए ३० वर्ष की आयु में उन्होंने दृढ़ निश्चय के स्वर में अपने बड़े भाई से कह दिया—"अब मैं रुक नहीं सकता, संन्यास लेकर ही रहूँगा।" उनके निश्चय के आगे नन्दिवर्द्धन को हार माननी पड़ी और वर्द्धमान ने संन्यास ले लिया।

राजकुमार वर्द्धमान के संन्यास लेने की कहानी भी बड़ी रोचक है, अत्यन्त हृदयग्राही। उन्होंने चुपके घर नहीं

छोड़ा । संन्यास लेने के पहले कुण्ड ग्राम के नागरिकों, अधिकारियों, राजपरिवार वालों की एक सभा आयोजित की गई । यह एक भव्य समारोह था । लोगों की आँखों में खुशी और दु ख के मिश्रित अश्रु झिलमिला रहे थे । प्रसन्नता इस बात की थी कि राजकुमार अब लोककल्याण के महान् कार्य में लगेंगे, वे लोगों के दुखंदर्द को दूर करने का रास्ता बतायेंगे, उन्हें ज्ञान देकर उनके अज्ञान का नाश करेंगे और दुःख इस बात का था कि उनके प्रिय राजकुमार अब सदा के लिए उनसे दूर जा रहे थे । उनको देखने, उनसे बातें करने का अवसर अब जीवन में नहीं मिलेगा ।

उस समारोह में राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने लोगों से विदा ली । विदा लेकर वे एक सुसज्जित पालकी में जा बैठे । पालकी गाँव के बाहर के बगीचे की ओर बढ़ चली । वहां पालकी उतारी गई और उसमें से राजकुमार वर्द्धमान निकले । उसी राजकीय उद्यान में राजकुमार ने अपने राजसीवस्त्र उतार दिये, रत्नों से जड़े गहने भी उतार दिये । कहा जाता है कि शरीर पर केवल एक धोती रखे राजकुमार वर्द्धमान अपने राज्य को छोड़कर संन्यासी की तरह जीवन बिताने जंगल की ओर चल पड़े ।

संन्यास लेने के समय ही महावीर वर्द्धमान ने कुछ महत्वपूर्ण संकल्प लिये कि वे—

१. अहिंसा का पूर्णतया पालन करेंगे और इसके लिए सावधानी से आगे की चार हाथ जमीन देखकर चलेंगे; किसी वस्तुको उठाते या रखते समय इस बात की सावधानी रखेंगे कि किसी जीव को कष्ट न होने पावे ।

२. सत्य पर अडिग रहेंगे,

३. अस्तेय का पालन करेंगे,

४. पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहेंगे,

५. अपने पास कोई वस्तु नहीं रखेंगे, पूरी तौर से अपरिग्रही रहेंगे,

६. बहुत ही कम बोलेंगे और जब कभी बोलेंगे तो सत्य ही बोलेंगे किन्तु यदि सत्य भी कटु हो या दुःखदायी हो तो मौन ही रहेंगे,

७. सदा शुद्ध और निर्दोष भोजन करेंगे तथा एक ही समय करेंगे,

८. प्रिय और अच्छी लगने वाली वस्तुओं को नहीं छुवेंगे, किसी प्रिय वस्तु को ओर नहीं देखेंगे, न प्रिय गंध को सूंघेंगे, न प्रिय शब्दों को या स्वरों को सुनेंगे,

९. अनुचित और अनुपयोगी स्थानों का त्याग करेंगे,

१०. अपनी इच्छाओं को वश में रखेंगे,

११. शरीर के कष्टों का ध्यान नहीं करेंगे,

१२. अपने हाथों ही आने वालों को एक-एक कर उखाड़ फेंकेंगे।

कहते हैं कि महावीर स्वामी जिस समय शरीर पर केवल एक ही वस्त्र धारण किये संन्यासी बन चुके थे, तो एक ब्राह्मण ने उनसे कुछ दान मांगा। इस पर उन्होंने अपना आधा वस्त्र फाड़ कर दे दिया। ब्राह्मण उस वस्त्र को लेकर जब दर्जी के पास गया तो दर्जी ने बताया कि यह तो बहुत ही कीमती कपड़ा है। इसे बेच कर तुम अपने लायक कई कपड़े बना सकते हो। इससे ब्राह्मण के मन में लालच हो आया और पुनः महावीर स्वामी से उनका आधा कपड़ा लेने चल पड़ा। एक बार ऐसा हुआ कि जंगली राह में जाते समय महावीर स्वामी का वह आधा वस्त्र कंटीली झाड़ियों में उलझ कर अटक गया। महावीर स्वामी को वस्त्रों से मोह तो था नहीं। उन्होंने उस वस्त्र को वहीं लटकता छोड़ दिया और आगे बढ़ गये। ब्राह्मण तो इसी ताक में था ही, उसने झट वह आधा वस्त्र भी उठा लिया!

कठिन तपस्या

महावीर स्वामी ने जीवन में तपस्या को महत्वपूर्ण माना है, तपस्या का ही दूसरा नाम है किसी पर क्रोध न करते हुए सभी तरह के कष्टों को झेलना। गृह त्याग करते समय ही महावीर ने निर्णय लिया था कि वे किसी पर क्रोध नहीं करेंगे। उन्होंने अपने इस निर्णय को निभाया जैसा कि हम पहले अध्याय में देख चुके हैं और आगे की घटनाओं से भी प्रकट है।

तपस्या के दिनों के लिए महावीर स्वामी ने अपने लिए कुछ व्यवहार तय किये। उन्होंने तय किया कि वे कभी दूसरों की सहायता पर निर्भर नहीं रहेंगे और अपने साहस और शक्ति के बल पर ही तपस्या करते रहेंगे। आप शायद सोचें कि तपस्या में दूसरों की सहायता की क्या जरूरत है? वह तो व्यक्ति खुद ही करता है। लेकिन ऐसी बात नहीं, मुनि लोग तपस्या करते हैं तो कभी-कभी छोटी-मोटी चीजों के लिए अपने शिष्यों तथा भक्तों पर निर्भर रहते हैं। आपको रामायण की कहानी मालूम होगी जब विश्वामित्र राजा दशरथ के पास गए और उनसे कहा कि राक्षस लोग मुनियों की तपस्या में विघ्न डालते हैं, इसलिये राजा को

चाहिए कि वे अपने बेटों-राम लक्ष्मण को उनके साथ कर दें ताकि वे दोनों राक्षसों को मार भगायें और इस तरह मुनि लोगों की तपस्या में विघ्न न पड़े। इस घटना से पता चलता है कि मुनियों को भी तपस्या के समय दूसरों की सहायता की आवश्यकता पड़ा करती थी, किन्तु महावीर स्वामी ने तय किया कि वे कभी दूसरों की सहायता नहीं लेंगे। इसके साथ ही उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि वे रास्ते में आने वाली कठिनाइयों से बचने की कोशिश नहीं करेंगे, चाहे वे कठिनाइयां और विघ्न कोई आदमी या जानवर पैदा करे चाहे वे प्राकृतिक हों; जैसे आंधी, वर्षा, ओले इत्यादि। महावीर स्वामी का कहना था कि जब हम किसी विपत्ति से बचने की कोशिश करते हैं तो इसका यही मतलब है कि हम आज के कष्ट को कल पर टालते हैं। इससे तो अच्छा यही है कि जो भी विघ्न बाधायें सामने आयें उनका सामना किया जाय और आज ही उन पर विजय प्राप्त की जाय, उन्हें किसी और दिन के लिए नहीं टाला जाय। वे कहा करते थे कि जब तक कर्मों का नाश नहीं होता तब तक मोक्ष नहीं मिलता; और विपत्तियों से बचने से कर्मों का नाश नहीं होता, वे ज्यों के त्यों बने रहते हैं।

गृह त्याग करने के बाद महावीर श्रमण बन गए। श्रमण जैन धर्म में उस व्यक्ति को कहते हैं जो घर-बार छोड़ कर संन्यासी बन जाता है और तपस्या करके ज्ञान या मोक्ष

प्राप्त करने में लग जाता है। महावीर स्वामी ने साढ़े बारह वर्षों तक कठोर तपस्या की। इस तपस्या के दिनों में उन पर अनेक कष्ट आये, लोगों ने उन्हें तंग किया, प्राकृतिक बाधायें आईं, तरह-तरह के लालच उन्हें दिये गए किन्तु वे अविचल रहे। इतना ही नहीं, तपस्या के दिनों में ही उन्होंने कई लोगों का उपकार किया, कइयों को जीवन-दान दिया।

घर से निकल कर महावीर पहले मोराक गांव के पास एक जंगल में तपस्या करने गए। वहां पर एक आश्रम था जिसके कुलपति महावीर के पिता सिद्धार्थ के मित्र थे। कुलपति ने जब यह जाना कि उनके मित्र राजा सिद्धार्थ के पुत्र वर्द्धमान ही श्रमण बन कर तपस्या कर रहे हैं, तो उन्होंने महावीर का स्वागत किया और कहा कि वे उनके आश्रम में रह कर ही तपस्या कर सकते हैं। महावीर स्वामी ने यह बात मान ली और वहीं एक झोंपड़ी में तपस्या में लग गए।

उस आश्रम में कुछ और साधु और मुनि भी रहते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि महावीर स्वामी ध्यान लगाए बैठे थे, इतने में कुछ गायें आश्रम में घुस आईं और वे झोंपड़ियों को खाने लगी। दूसरे मुनियों ने तो उन गायों को खदेड़ दिया किन्तु जब वे गायें उस झोंपड़ी को खाने लगीं जिसमें महावीर स्वामी थे, तो उन्हें खदेड़ने वाला कोई नहीं था क्योंकि महावीर स्वामी तो ध्यान में थे, उन्हें पता ही

नहीं चला कि गायें कब आईं और कब झोंपड़ी को खा गईं।

दूसरे मुनियों ने जब यह देखा कि महावीर की झोंपड़ी को गायें नष्ट कर गईं और यह ध्यान लगाये ही रहा, तो उन्हें बुरा लगा। उन्होंने जाकर कुलपति से शिकायत की– "महावीर ने अपनी झोंपड़ी गायों से चरवा दी।"

कुलपति ने यह सुना तो वे रुष्ट हो गए। उन्होंने महावीर स्वामी से कहा—यह तो अच्छी बात नहीं कि गायें झोंपड़ी नष्ट कर दें और तुम्हें पता ही नहीं चले कि कोई झोंपड़ी को नष्ट कर रहा है। आखिर अपनी चीज की सुरक्षा तो करनी ही चाहिए।

महावीर स्वामी क्या कहते! उन्होंने तो गायों को बुलाया नहीं था, न उन्हें यह ही मालूम हो सका कि कब गायें झोंपड़ी को नष्ट कर गईं। वे चुप हो रहे; किन्तु उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि वह स्थान उन्हें छोड़ देना चाहिए।

महावीर स्वामी ने वह आश्रम छोड़ दिया। साथ ही भविष्य के लिए निश्चय किया कि :

१. मैं उस स्थान पर नहीं जाऊँगा जहाँ मेरा जाना दूसरों को बुरा लगे;
२. जहाँ भी रहूंगा शरीर का ध्यान नहीं रखूंगा; यह नहीं सोचूंगा कि वर्षा-धूप आदि से बचने के लिए

कोई स्थान हो तभी वहाँ तपस्या करूँ;

३. अधिकतर मौन ही रहूंगा, तभी बोलूँगा जब बोलना बहुत ही आवश्यक हो;

४. खाने-पीने के लिए कोई बर्तन नहीं रखूँगा और हाथ से ही जो कुछ मिल जायेगा, ग्रहण करके भोजन करूँगा और हाथ से ही जल पीऊँगा; तथा

५. गृहस्थों से कभी कोई चीज नहीं मांगूंगा; जंगल में किसी आश्रम में कुछ मिल जावेगा तो ग्रहण कर लूँगा या फिर जंगली फल-फूल पर ही निर्भर रहूंगा ।

इस निर्णय के साथ महावीर स्वामी ने वह आश्रम छोड़ दिया और आगे बढ़े । चलते-चलते वे अस्थि ग्राम में आये । वहाँ एक यक्ष रहता था जो बड़ा दुष्ट था । साधु संन्यासियों को सताने में उसे बहुत आनन्द आता था । उस यक्ष का नाम था शूलपाणि । शूलपाणि का अर्थ होता है—ऐसा व्यक्ति जिसके हाथ में बरछे हों या जिसके हाथ बरछे और कांटे की तरह कठोर हों । सचमुच शूलपाणि था भी ऐसा ही । शायद उसके हाथों लोगों को कष्ट होते देख कर ही लोगों ने उसका यह नाम रख दिया था ।

महावीर स्वामी को किसी से भय तो था ही नहीं, वे कष्टों से भी नहीं डरते थे । इसीलिए उन्होंने उस यक्ष

के अतिथि-गृह में ठहरने में कोई असुविधा नहीं देखी। वे उसी यक्ष के यहां जा धमके।

जब महावीर स्वामी यक्ष के यहां जा रहे थे तो गांव वालों ने उन्हें मना किया था —'भगवन्, वह यक्ष बड़ा ही दुष्ट है। साधु-संन्यासियों को भी नहीं छोड़ता; भयंकर कष्ट देता है।" ग्रामीणों को बात पर महावीर स्वामी ने कोई ध्यान नहीं दिया। वे तो कष्टों को सहने और भूले-भटकों को मार्ग पर लगाने तथा लोगों का अज्ञाव मिटाने के लिए आये थे।

यक्ष ने मन में कहा—इस साधु को लगता है मेरी ताकत का पता नहीं है, तभी यह बेखटके मेरे यहां चला आया। अच्छी बात है, इसको भी वह मजा चखाऊंगा जो इसे जिन्दगी भर याद रहेगा।

जब रात हो गई और सभी सो गए तो शूलपाणि अपने कमरे से निकला। निकलते ही उसने एक भयानक गर्जना की जिससे सभी चौंक पड़े। गांव वालों ने सोचा, हो न हो, यक्ष आज रात को उस साधु को खत्म कर देगा।

शूलपाणि अट्टहास करते हुए उस जगह आया जहाँ महावीर स्वामी ध्यान लगाये थे। उसके अट्टहास और गरजने से जब महावीर स्वामी भयभीत नहीं हुए तो शूलपाणि ने अपने नाखूनों और दांतों से उन्हें खरोंचना और काटना शुरू किया, किन्तु महावीर स्वामी अविचल भाव से अपने

ध्यान में लीन रहे। उनके इस धैर्य को देखकर शूलपाणि और भी झल्ला उठा। अबकी बार उसने सांप बन कर उन्हें काटना शुरू किया, जगह-जगह काट कर उनके शरीर में उसने विष भरा किन्तु महावीर स्वामी शान्त अपनी समाधि में लगे रहे। अब तो शूलपाणि और भी खिसयाया। उसने महावीर स्वामी के शरीर पर सात स्थानों—आंख, नाक, कान, शिर, दांत, नाखूनों और पीठ—पर भयंकर पीड़ा उत्पन्न की। इस भयंकर पीड़ा को भी जब महावीर स्वामी सहन कर गये और बदले में कुछ न कहकर अपने ध्यान में ही लीन रहे, तो शूलपाणि घबरा गया। उसने मनमें कहा—यह भी कैसा मनुष्य है! इसको न तो किसी प्रकार का भय है, न यह कष्टों से घबराता है। जरूर ही यह साधारण मनुष्यों से बढ़कर है।

हार मानकर शूलपाणि महावीर स्वामी के चरणों में गिर पड़ा। महावीर स्वामी ने उससे कहा—शूलपाणि, दूसरे जीवों को भी अपने जीव जैसा ही समझो। जिस तरह तुम्हें अपने प्राणों की चिन्ता है, उसी तरह अन्य प्राणी भी जीवित रहना चाहते हैं, उन्हें मारो मत। दूसरों को कष्ट मत दो। स्वयं जीओ और दूसरों को भी जीने दो। यह मनुष्य का कर्तव्य है, यही धर्म का रास्ता है।

उसी दिन से शूलपाणि ने हिंसा त्याग दिया। अब उसने दूसरों को सताना भी बन्द कर दिया।

शूलपाणि के यहाँ से महावीर स्वामी आगे बढ़े । वे जंगलों में घूमते रहे । उनके रास्ते में अनेक कठिनाइयाँ आईं । इन कठिनाइयों को उपसर्ग कहते हैं । महावीर स्वामी इन उपसर्गों को पार करते आगे बढ़ते रहे ।

एक बार जब जंगल में वे ध्यान लगाये बैठे थे तब इन्द्र अपने दरबार में देवताओं से कह रहे थे कि धरती पर महावीर स्वामी चौबीसवें (तीर्थंकर) के रूप में इन दिनों तपस्या कर रहे हैं । इन्द्र की बात पर एक देव को विश्वास नहीं हुआ । उस देव का नाम था संगम । जब दरबार से वह उठने लगा तो इन्द्र ने पूछा—"कहाँ जा रहे हो ?"

"महावीर स्वामी की परीक्षा लेने"—उसने कहा और वह वहाँ-आया जहाँ भगवान महावीर ध्यान में लीन थे ।

महावीर स्वामी की परीक्षा लेने के लिये संगम देव ने एक ही रात में २० उपसर्ग उपस्थित किये जो इस प्रकार हैं :

१. उसने आते ही उस स्थान के आसपास धूल की भयंकर वर्षा शुरू कर दी । एक तो रात का समय दूसरे भयंकर धूल । हाथ को हाथ नहीं सूझता था, सांस लेने में भी कठिनाई होने लगी । सारा शरीर धूल से भर गया । इतने पर भी महावीर स्वामी अविचल भाव से अपनी साधना में लगे रहे ।

२. इसके बाद उसने वज्रमुखी चीटियों से महावीर

स्वामी का शरीर कटवाना शुरू किया। एक साथ सहस्रों चीटियाँ उनके शरीर पर चढ़ गईं और उन्हें काटने लगीं, लेकिन उनका ध्यान नहीं टूटा।

३. जब चींटियों के काटने से उनका ध्यान नहीं टूटा तो संगमदेव ने सैकड़ों मच्छर पैदा कर दिये। वे मच्छर महावीर स्वामी के शरीर पर टूट पड़े और अपनी सूई जैसी पैनी नोक उनके शरीर में चुभाने लगे और खून पीने लगे।

४. महावीर स्वामी जब इस पीड़ा को भी सह गए तो देवने असंख्य दीमकें उत्पन्न कर दीं जो महावीर स्वामी के शरीर को वैसे ही चाटने लगीं जैसे वे लकड़ी को चाट जाती हैं। इतने पर भी वे अविचल रहे।

५. इन सारे उपसर्गों से भी जब महावीर स्वामी का ध्यान नहीं टूटा तो संगमदेव ने जहरीले बिच्छू छोड़े जो उनके शरीर पर डंक मारने लगे। कोई साधारण आदमी हो तो एक ही डंक से तड़प जाय, किन्तु महावीर स्वामी को सैकड़ों बिच्छुओं ने डंक मारे, फिर भी वे अडिग रहे।

६. ज्यों-ज्यों महावीर स्वामी भयंकर उपसर्गों को सहते जाते थे, त्यों-त्यों संगमदेव और भी कठिन उपसर्ग उपस्थित करता था। जब बिच्छुओं के डंक मारने का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो (७) संगम देव ने नेवलों से उनका शरीर नुचवाया, (८) बड़े-बड़े सर्पों से उन्हें कटवाया

और (९) चूहे उन पर छोड़े जो जगह-जगह उनके शरीर को कुतर जाते और उन पर पेशाब कर जाते, परन्तु महावीर स्वामी उन सभी उपसर्गों को पार कर गए।

अब तो सगम देव ने भी ठान ही ली कि किसी तरह वह महावीर स्वामी का ध्यान तोड़ेगा जरूर, इसलिए उसने (१०) हाथी बनकर उन्हें सूँड़ में उछाला, दांतों से उन्हें दबाया, (११) पिशाच बनकर उन्हें डराने की कोशिश की, उनके शरीर पर बर्छीमारी, (१२) बघेरा बनकर उनको दांतों व नाखूनों से चीरा, (१३) पक्षियों से उनका शरीर नुचवाया-पक्षी आते और अपनी चोंच में महावीर स्वामी के शरीर का कोई हिस्सा पकड़ कर नोच ले जाते, पर वे अपने ध्यान में लगे रहे, उन्हें किसी तरह का भय नहीं हुआ।

संगम देव ने सोचा, महावीर अपनी माता का बहुत आदर करते हैं, उस पर संकट समझ कर ध्यान लगाना छोड़ देंगे। इसलिये (१४) उसने माता त्रिशला का रूप बना कर उनके सामने विलाप करना शुरू किया। पर वे अविचल रहे। इसके बाद उसने (१५) उनके पैरों के नीचे आग जलाई, (१६) आंधी में उनके शरीर को ऊपर उठा लिया, (१७) बवण्डर बनकर उनके शरीर को इस तरह नचाया जैसे भभूलिया पत्ता नचाता है, (१८) कालचक्र से उनके शरीर को घुटनों तक मिट्टी में धंसाया लेकिन महावीर

स्वामी फिर भी विचलित नहीं हुए।

अन्त में उसने दो उपसर्ग और छोड़े। वह (१९) विमान में बैठकर देवता के रूप में आया और उनसे कहने लगा—"तपस्वी, तू किस साधना में है? तेरी क्या इच्छा है? मैं तेरे तप से सन्तुष्ट हूं। बोल, स्वर्ग लेगा या अपवर्ग? तू कहे तो अभी तुझे स्वर्ग में स्थान दिलाऊँ और चाहे तो तुझे मोक्ष दिलाऊँ।"

इतने पर भी जब महावीर अपने ध्यान में ही लगे रहे तो उसने स्वर्ग की अप्सराओं की सहायता ली। वे अप्सरायें (२०) बड़ी सजधज से आईं और महावीर स्वामी के सामने लुभावना नृत्य करने लगीं तथा तरह-तरह के हाव-भाव दिखाने लगीं। फिर भी महावीर स्वामी अविचलित रहे।

अंततः संगमदेव को विश्वास हो गया कि सचमुच यह तपस्वी चौबीसवें तीर्थंकर ही हैं और भयंकर से भयंकर उपसर्ग भी इन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकते।

इस तरह अपने साधना-काल में महावीर स्वामी को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। बंगाल में दिनाजपुर जहाँ आज-कल है, वहीं प्राचीन काल में लाढ़ नामक नगर था। वहाँ अनार्य रहते थे। उन अनार्यों ने भगवान महावीर को भारी कष्ट दिये किन्तु आप किसी पर क्रोध किये बिना निर्विकार भाव से अपनी साधना में लगे रहे। एक बार

तो एक दुष्ट ने इन्हें बुरी तरह फंसा दिया था। वह दुष्ट जब चोरी करते पकड़ा गया तो उसने कहा—"मुझे क्यों मारते हो? मैं तो अपने गुरु की आज्ञा से चोरी कर रहा था।" लोगों ने जब उसके गुरु के बारे में पूछा तो उसने महावीर स्वामी को बताते हुए कहा—"मेरा गुरु बड़ा ढोंगी है। वह कराता है चोरी लेकिन साधुओं की तरह तपस्या करने का स्वांग भरता है?" जब लोग महावीर स्वामी पर मारने के लिए टूट पड़े तो इन्द्र ने ऐन्द्रजालिक का वेश बनाकर ऐन मौके पर उन्हें बचाया।

महावीर स्वामी ने इस प्रकार साढ़े १२ वर्षों तक कठिन तपस्या की। तपस्या के दिनों में गर्मी, सर्दी, बरसात उन्होंने नंगे रहकर ही झेला। कभी कोई वस्त्र अपने ऊपर नहीं रखा। भयंकर से भयंकर सर्दी में भी वह कभी हाथ-पैर नहीं सिकोड़ते थे। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि इन साढ़े बारह वर्षों में उन्होंने केवल ३४९ दिन भोजन किया, वह भी दिन में एक बार ही। इस तरह अपनी पूरी तपस्या के साढ़े बारह वर्षों में वह साढ़े ग्यारह वर्ष निराहार ही रहे—कुछ भी अन्न ग्रहण नहीं किया।

साढ़े बारह वर्षों की तपस्या के पश्चात् उन्हें जाम्भक गांव के पास वैशाख शुक्ला दशमी को परमज्ञान की प्राप्ति हुई और वे 'केवलिन्' कहलाये।

मोक्ष—प्राप्ति

परम ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् अब महावीर स्वामी लोगों का कल्याण करने और उन्हें ज्ञान देने निकल पड़े। आपने अपने उपदेशों में कहा—ऐ संसारवासियो, अच्छे-बुरे फल का कारण कर्म ही है। जैसा कर्म करोगे, वैसा ही फल मिलेगा। कर्म से ही मनुष्य असंख्य जीव के रूप में बार-बार पैदा होता है और मरता है। यदि कर्मों का बन्धन कोई काट देता है तो उसे फिर जन्म लेने की आवश्यकता नहीं, उसका मोक्ष हो जाता है और उसकी आत्मा ही परमात्मा बन जाती है।"

महावीर स्वामी ने अपने उपदेशों में बतलाया कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामक पांच महाव्रतों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। जो मनुष्य इन व्रतों का पालन करता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है। इन व्रतों के पालन किये बिना किसी को मोक्ष प्राप्त करने की आशा नहीं करनी चाहिये।

महावीर स्वामी ने दया पर बहुत जोर दिया है। उनके अनुसार सभी धर्मों का मूल दया है। जिस व्यक्ति

के हृदय में दया नहीं है, वह धार्मिक नहीं बन सकता। साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि अपने हृदय में अच्छी तरह दया भरने के लिए मनुष्य को क्षमा, नम्रता, सरलता, पवित्रता, संयम, सन्तोष, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—इन दस धर्मों का पालन करना चाहिये। इनका पालन किये बिना मनुष्य का हृदय दया से पूर्ण नहीं हो सकता।

जिन दिनों महावीर स्वामी जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे, उन दिनों हमारे देश में तीन धर्म प्रमुख थे, ब्राह्मणधर्म, बौद्धधर्म और जैनधर्म। बौध और जैन धर्म तो एक बात में समान थे कि ये दोनों अहिंसा पर जोर देते और कहते थे कि किसी तरह भी किसी को मारने की तो बात ही क्या, सताना भी नहीं चाहिये। इन धर्मों के अनुसार यज्ञों में पशुओं की बलि देना भी पाप है। परन्तु ब्राह्मणधर्म अहिंसा का विरोधी था। उन दिनों बड़े-बड़े यज्ञ होते थे और उन यज्ञों में असख्य पशु काटे जाते थे। इसीलिए ब्राह्मण धर्म के मानने वाले जैन धर्म के विरुद्ध थे। टक्कर इन दोनों धर्मों में ही थी।

उन्हीं दिनों इन्द्रभूति नाम का एक बहुत नामी विद्वान् ब्राह्मण था। पूजा-पाठ तथा यज्ञ कराने में वह बहुत विख्यात था और बड़े-बड़े राजा जब अपने यहां पूजा-पाठ कराते या यज्ञ कराते तो उसे बुलाया करते थे। यज्ञ

करने में तो इन्द्रभूति बहुत जानकार था किन्तु वह वेद-उपनिषदों के सही ज्ञान को भूल बैठा था। असलियत यह है कि पूजा-पाठ में वह इतना व्यस्त था कि गूढ़ ज्ञान को समझने का उसके पास समय नहीं था। उन दिनों इन्द्रभूति का बड़ा रोब और दबदबा था। कोई उससे शास्त्रार्थ या तर्क करना नहीं चाहता था।

जब महावीर स्वामी ज्ञान प्राप्त कर जैनधर्म और अहिंसा का प्रचार कर रहे थे तो इन्द्र ने सोचा कि यदि इन्द्रभूति को परास्त कर दिया जाय तो पूजा-पाठ वाले ब्राह्मण अपने आप भगवान महावीर का लोहा मान लेंगे। उन्होंने एक ब्राह्मण का वेश बनाया और पहुँचे इन्द्रभूति के पास। इन्द्रभूति से उन्होंने कहा—महाराज, आप विद्वान् हैं। मेरे सामने एक कठिनाई आ गई है। मेरे गुरु मुझे कुछ ज्ञान दे रहे थे। उन्होंने एक श्लोक सुनाया लेकिन उसी बीच ही ध्यान में लीन हो गए। आप कृपया मुझे उस श्लोक का अर्थ समझा दीजिये।

घमण्ड में भरे हुये इन्द्रभूति ने कहा—इसमें क्या बात है। तुम अपना श्लोक सुनाओ, मैं अर्थ बताता हूं।

इन्द्र ने एक श्लोक सुनाया जिसमें 'छः प्रकार के द्रव्य कौन-कौन से हैं, आत्मा क्या है, तत्व किसे कहते हैं, मोक्ष क्या है?" इत्यादि प्रश्न पूछे गये थे।

इन्द्रभूति इन प्रश्नों को सुनकर चकरा गया । उसने कभी इन प्रश्नों पर विचार नहीं किया था ।

बहुत कुछ सोचने के बाद भी जब इन्द्रभूति को कोई उत्तर ही न सूझा तो उसने झल्लाकर कहा–तुम ऐसे प्रश्न पूछ रहे हो जिनका उत्तर कोई नहीं दे सकता ।

ब्राह्मण बने इन्द्र ने कहा–नहीं महाराज, मेरे गुरु इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं लेकिन दुःख तो यह है कि वे इस समय तपस्या में लगे हैं ।

अपनी झल्लाहट में ही इन्द्रभूति कहता गया–यदि तुम्हारे गुरु इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं तो चलो, मैं भी चलता हूँ और मैं भी उन्हें अपना गुरु मान लूँगा ।

इन्द्र तो यही चाहते थे कि किसी बहाने इन्द्रभूति महावीर स्वामी के सामने आ जाय । भगवान महावीर तो ज्ञान के साक्षात् अवतार थे ही । बचपन में ही आठ वर्ष की आयु में उन्होंने अपने गुरु को ज्ञान से चकित कर दिया था और जब गुरु ने उनके पिता सिद्धार्थ से सारी बातें कही थीं तो उन्होंने पुलकित होकर कहा था–मुझे क्या पता था कि मेरा बेटा 'गुरूणां गुरुः''-गुरुओं का भी गुरु है ।

इसी गुरुओं के गुरु भगवान महावीर के पास जब इन्द्रभूति पहुँचा और उन्होंने सभी प्रश्नों का उत्तर दे दिया तो वह बहुत चकराया । उसे इस बात से और भी आश्चर्य हुआ कि इतना बड़ा ज्ञानी बड़े ही साधारण

ढंग से रहता है, शरीर पर कपड़े भी नहीं रखता, हाथों में ही खाता है, कोई बर्तन पास में नहीं। महावीर स्वामी के सरल व्यवहार ने तो इन्द्रभूति को मुग्ध ही कर दिया। वह सोचने लगा—कैसा दिव्य तेज है इस संन्यासी के मस्तक पर! कितनी शान्ति है इसके चेहरे पर और कितना अगाध ज्ञान भरा इसके मस्तिष्क में! इन्द्रभूति एकटक महावीर स्वामी को देखता रहा और अन्त में उनके पैरों में पड़कर उन्हें अपना गुरु और आचार्य स्वीकार कर लिया।

महावीर स्वामी ने इन्द्रभूति को उठाते हुए कहा—"इन्द्रभूति, तुम अभी तक अन्धकार में भटकते रहे। तुमने असत्य को सत्य मान लिया था, अंधेरे को प्रकाश समझते रहे। अब तक तुमने असंख्य जीवों की बलि के मंत्र पढ़े हैं, अब तुम अहिंसा के प्रकाश से अपना मस्तिष्क भर लो, दया और करुणा की गंगा से अपने हृदय को पवित्र करो। उठो, और अपनी ही तरह संसार के लोगों का अज्ञान मिटाओ। ससार के जीव हिंसा, द्वेष, कलह, वैर, क्रोध की आग में निरन्तर जल रहे हैं, अपार कष्ट भोग रहे हैं। उन्हें अहिंसा देवी के दर्शन करा कर उन्हें शान्ति दो। सबको 'जीओ और जीने दो' का सन्देश सुनाओ।"

भगवान महावीर की इस अमृतवाणी को सुन कर सहसा इन्द्रभूति के हृदय में एक प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उसने जीवन का

मर्म समझ लिया है, अब उसे जानने को कुछ भी शेष नहीं है।

इन्द्रभूति द्वारा महावीर स्वामी का शिष्यत्व ग्रहण करने की चर्चा चारों ओर फैल गई। अब भारी संख्या में लोग उनके उपदेश सुनने आने लगे। उनका यश दूर-दूर तक फैला। बड़े-बड़े राजाओं ने उनके धर्म को स्वीकार कर लिया और अपनी प्रजा में उसका प्रचार किया।

महावीर स्वामी के शिष्यों की संख्या काफी बड़ी थी। उनके संघ में स्त्री-पुरुष दोनों ही थे। महावीर स्वामी अपना उपदेश उन दिनों की प्रचलित भाषा में दिया करते थे, इसलिए लोग उसे आसानी से समझ सकते थे। उनके शिष्यों के रहने के लिए जगह-जगह विहार बने थे। विहार उन आश्रमों को कहते थे जिनमें ये जैन श्रमण या साधु रहते थे। असंख्य विहार उन दिनों पाटलिपुत्र, वैशाली, राजगृह आदि नगरों और राज्यों में बने। उन विहारों के कारण ही उस प्रदेश का नाम, जहाँ ये विहार थे, विहार पड़ गया। आजकल के विहार के नामकरण के पीछे यही कहानी है।

बिहार में अपने धर्म का प्रचार कर और लोगों को ज्ञान का अमृत पिलाकर भगवान महावीर ने सारे भारत का भ्रमण किया। वे जहाँ भी जाते असंख्य लोग उनके उपदेश सुनने को दौड़े आते। जिनके हाथ का भोजन महावीर

स्वामी स्वीकार कर लेते, वह धन्य माना जाने लगा। सभी कहते, इसने पूर्वजन्म में निश्चित रूप से ही कोई बड़ा पुण्य किया है, तभी भगवान महावीर ने इसका भोजन ग्रहण किया।

भारत में जगह-जगह भ्रमण करने के पश्चात् महावीर स्वामी ने भारत के पश्चिम में ईरान और फारस आदि देशों का भी भ्रमण किया और वहां लोगों को उपदेश दिये। उन दिनों सभी जगह उनकी चर्चा थी। जहाँ कहीं वे जाते, बड़े-बड़े राजे-महाराजे नंगे पांव इनके स्वागत में खड़े दिखाई देते।

इस तरह लगभग ३० वर्षों तक लोगों को ज्ञान का उपदेश देकर महावीर स्वामी अपनी वृद्धावस्था में विहार के पावापुरी में आ गए। उन दिनों पावापुरी का राजा हस्तिपाल था। हस्तिपाल ने जब सुना कि भगवान महावीर उसके राज्य में आ रहे हैं तो वह निढाल हो गया। उसने अपना परम सौभाग्य समझा कि अब वह नित्य भगवान महावीर के उपदेश सुना करेगा। बड़े आदर से उसने महावीर स्वामी को अपने राजकीय उद्यान में ठहराया।

उनके उपदेश सुनने के लिए पावापुरी की जनता सागर की लहरों की तरह मचल पड़ी। कुछ दिनों तक महावीर स्वामी ने अपने उपदेशों से लोगों का अज्ञान हरा, किन्तु

अब उनका कार्य पूरा हो चुका था। उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया था, केवलिन् बन गए थे और अपने ज्ञान से असंख्य लोगों का अज्ञान दूर किया था।

अब भगवान महावीर के धरती छोड़ने का समय आ गया था। अब तक वे अनेक रूपों में, कई जन्मों में धरती पर आये थे किन्तु इसके बाद वे मोक्ष पाने वाले थे, अब उनका पुनः आना नहीं हो सकता था। महावीर स्वामी इसे जानते थे कि उनका नश्वर शरीर यहीं रह जायगा और आत्मा मुक्त होने वाली है किन्तु उन्हें इस बात से कोई चिंता नहीं थी। वे सभी कर्मों के बंधन काट कर अब मोक्ष या निर्वाण लेने जा रहे थे।

ईसा से ५२६ वर्षों पूर्व—यानी आज से २५०० वर्षों पहले की बात है। वही, पावापुरी के राजा हस्तिपाल का राजकीय उद्यान। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की काली रात बीत रही थी। प्रभात होने में अभी थोड़ी देर थी। उनके शिष्य-उत्सुकता से प्रातःकाल उनके उपदेशों को सुनने के लिए अधीर थे। पावापुरी की जनता इस आशा में थी कि अब प्रातः ही उन्हें भगवान के पुनः दर्शन होगे और उनकी अमृतवाणी सुनने को मिलेगी, किन्तु महावीर स्वामी अलग एकांत में बैठे ध्यानमग्न थे।

सहसा ध्यानस्थ बैठे भगवान महावीर के शरीर से एक

दिव्य प्रकाश निकला जो उनके मस्तक और सिर से होता हुआ आकाश में विलीन हो गया। उनकी आत्मा परमात्मा बन गई थी, उन्होंने निर्वाण या मोक्ष को प्राप्त कर लिया और इस धरती पर शेष रह गई थी उनकी काया जिसे देखने से ऐसा लगता था कि महावीर अभी भी ध्यान में हैं। उनके चेहरे पर वही अतुल शांति और तेज विराजमान थे।

मेघकुमार की कहानी

महावीर स्वामी अपने उपदेशों में इस बात पर बहुत जोर दिया करते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को समदृष्टि या समभाव रखना चाहिए। उनके समभाव का अर्थ यह है कि विभिन्न वस्तुओं के बीच भेद नहीं करना चाहिए।

इस बात को खुलासा रूप में इस प्रकार समझें।

संसार में प्रत्येक वस्तु की विरोधी वस्तु भी है। कोई गोरा है, तो दूसरा काला है, कोई धनी है, तो कोई गरीब है, कोई पढ़ा-लिखा है, तो कोई अनपढ़ भी है, कोई मर्द हैं, तो औरतें भी हैं, बूढ़े हैं तो बच्चे भी हैं। यह तो आदमिया की बात हुई। गुणों में भी यही बात है। अच्छाई है तो बुराई भी है; गाली है तो प्रशंसा भी है; सम्मान है तो अपमान भी है, गुण हैं तो अवगुण भी हैं, उपकार है तो अपकार भी है।

जीवन में होता यह है कि हम अच्छाइयों को चाहते हैं और बुराइयों को नहीं चाहते। कोई हमारी प्रशंसा करता है तो अच्छा लगता है, गाली देता है या बुराई करता है तो बुरा लगता है। महावीर स्वामी का कहना

है कि मनुष्य को अच्छाई और बुराई दोनों को एक समान मानना चाहिए । न तो प्रशंसा से प्रसन्न होना चाहिए, न शिकायत से दुःखी होना चाहिए. कोई सम्मान करे या अपमान, न तो अच्छा मानना चाहिए, न बुरा । कोई किसी के प्रति भलाई करे या बुराई, न अच्छा मानना चाहिए, न बुरा ।

इस तरह विरोधी बातों को समान समझना ही समभाव या समदृष्टि है । जब व्यक्ति में समभाव आ जाता है तो उसके मन के सारे विकार, सारी बुराइयाँ अपने आप दूर हो जाती हैं । वह मनुष्यों में पूज्य बन जाता है और सच्चे ज्ञान को प्राप्त करता है ।

इसी समदृष्टि का ज्ञान देकर महावीर स्वामी ने राजकुमार मेघकुमार का अज्ञान दूर कर दिया और उन्हें सच्चा मुनि बना दिया । इसकी बड़ी ही रोचक कहानी है ।

जिन दिनों महावीर स्वामी जगह-जगह घूमकर उपदेश देते और लोगों को धर्म का सच्चा रास्ता बताया करते थे, उन दिनों राजगृह में बिम्बिसार राजा थे । बिम्बिसार महावीर स्वामी का सम्मान करते थे और उन्होंने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया था । बिम्बिसार के दूसरे राजकुमार का नाम था मेघकुमार । मेघकुमार भी महावीर स्वामी के उपदेशों से प्रभावित होकर उनके संघ में सम्मिलित हो गए थे । वे अन्य साधु-मुनियों की तरह ही सादा जीवन बिताते थे और जमीन पर ही सोते थे ।

लेकिन राजकुमार मेघकुमार को सोने की जो जगह मिली थी सबके अन्त में जहाँ से बार-बार लोग आते-जाते। इससे लोगों के पैरों की धूल उन पर पड़ती। उन्हें इस बात की भी चिन्ता थी कि अब लोग उनका सम्मान एक राजकुमार की तरह नहीं करते थे। साधारण आदमी की तरह ही उनको भी मानते थे।

इन बातों को सोचकर मेघकुमार का मन उदास रहने लगा। उन्होंने सोचा कि जब मैं राजकुमार था, तब तो सभी मेरा आदर करते थे, अब कोई पूछता हो नहीं। इतना ही नहीं, सभी मुझ पर अपने पैरों की धूलि डालते हैं। यह तो अपमान की बात है। उन्होंने सोचा—मैं तो साधु इसलिए बना था, राजमहलों के सारे सुखों को इसलिए छोड़ा था कि और कुछ नहीं तो लोग इस बात के लिए मेरी प्रशंसा करेंगे और आदर देंगे कि देखो, एक राजकुमार ने धन-दौलत, सुख-वैभव को ठोकर मार दिया, किन्तु यहाँ तो उल्टी बात है। कोई पूछता ही नहीं। इससे तो अच्छा है कि फिर से राजमहल में लौट जावें। वहाँ सम्मान तो मिलेगा।

मेघकुमार ने निश्चय किया कि वे महावीर स्वामी की आज्ञा लेकर पुनः राजमहल में लौट जायेंगे।

यही सोचकर एक दिन जब महावीर स्वामी अकेले में थे, तो राजकुमार मेघकुमार उनके पास आज्ञा लेने पहुँचे।

मेघकुमार को आया देखकर महावीर स्वामी ने उन्हें बैठाया और उनसे कहना शुरू किया—मेघकुमार, तुम्हारा मन संघ के जीवन से उकता गया है। तुम सोचते हो कि यहाँ तुम्हें राजकुमारों की तरह सम्मान नहीं मिलता, लोग तुम्हारा आदर नहीं करते, तुम्हें सोने की जगह सबके पैरों के पास मिली है, इसलिए तुम वापिस राजमहल को लौट जाने के लिए मेरी आज्ञा लेने आये हो। क्यों, है न यही बात ?

मेघकुमार महावीर स्वामी की यह बात सुनकर अवाक् रह गए। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि इन्होंने मेरे मन की बात कैसे जान ली। उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा—हाँ भगवन्, बात तो यही है।

इस बात पर महावीर स्वामी ने कहना शुरू किया—मेघकुमार, तुम जानते नहीं हो पहले जन्मों में तुम क्या थे और किस प्रकार तुम मनुष्य-योनि में आये। सुनो, मैं बताता हूँ। अब से तीसरे जन्म में तुम हाथी थे। तुम में अथाह बल था और उस बल का तुम्हें बड़ा ही घमण्ड था। जंगल के सभी जानवर तुमसे भयभीत रहते थे। अचानक एक बार यह हुआ कि तुम दलदल में फंस गए। तुमने उस दलदल से निकलने की जितनी कोशिश की, उतना ही अधिक तुम उसमें फंसते गए और अन्त में तुम उसी दलदल में इस तरह फंस गए कि निकल ही नहीं सकते

थे। तुम्हें इस असहाय अवस्था में देखकर पशु-पक्षियों ने तुम पर हमला करना शुरू कर दिया। तुम्हारे शरीर को नोंचखसोट कर खा डाला और उसी स्थान पर तुम्हारी मृत्यु हो गई।

मरते समय तुम्हारे मन में बड़ी पीड़ा थी। रह-रह कर तुम्हारे मन में यह भावना उठती थी कि एक बार दलदल से छुटकारा मिल जाता तो उन जानवरों से तुम बदला चुका लेते। प्रतिशोध यानी बदला लेने की इस तीव्र भावना को लिए हुए ही तुम्हारा प्राणान्त हुआ था। उसी कारण अगले जन्म में भी तुम हाथी ही बने।

अबकी बार तुम जिस जंगल में रहते थे, वह बहुत ही बड़ा था। उसमें जगह-जगह बाँस के झुण्ड थे। एक बार ऐसा हुआ कि तुम जंगल में घूम रहे थे। अचानक जंगल में आग लग गई। इसके पहले कि तुम वहाँ से भागते, दूर-दूर तक आग फैल गई। कहीं भी भागने का रास्ता नहीं रहा। तुम भयभीत हो गए। जंगल के दूसरे जीव भी भयभीत हो उठे। सभी अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भागने लगे। आग के डर से जानवर अपना जन्म-जात वैर भूल गए, जिसको जहां जगह मिली, वहीं छिपने लगा।

उस आग से डर कर तुम भी एक हरे-भरे पेड़ के नीचे खड़े हो गए। खड़े-खड़े तुम्हारे एक पैर में खाज

चलने लगी। उस खाज को मिटाने के लिए तुमने दूसरा पैर उठाया और उससे खाज मिटाई। लेकिन जब तुम अपना उठाया हुआ पैर वापिस रखने लगे तो तुमने देखा कि उस जगह पर खरगोश का एक बच्चा आ गया है। वह भी तुम्हारी तरह आग से डर गया था और अपने मां-बाप से बिछुड़ गया था। खरगोश के बच्चे को देखकर तुम्हारे मन में दया आ गई। तुम्हारा समभाव जाग पड़ा। तुमने सोचा, जिस तरह मेरा शरीर है, मेरा जीव है, उसी तरह इस खरगोश के बच्चे का भी है। यदि मैं पैर रख देता हूँ तो इसकी मृत्यु हो जावेगी। यह सोच कर तुम तीन पैर पर ही खड़े रहे और चौथा पैर ऊपर ही उठाये रखा।

इधर आग ऐसी लगी थी कि बुझने का नाम ही नहीं ले। बहुत समय तक आग जलती रही। अन्त में जब वह बुझी तो खरगोश का बच्चा वहां से चला गया। अब तुमने अपना पैर रखा, किन्तु बहुत समय तक तीन पैरों पर खड़े रहने के कारण तुम बहुत थक गए थे, इतना थक गए थे कि पैर जमीन पर रखते ही तुम धड़ाम् से गिर पड़े और वहीं तुम्हारा प्राणान्त हो गया। मरते समय तुम्हारे मन में प्रसन्नता थी कि तुमने खरगोश के बच्चे को बचाया। उस समय तुम्हारे मन में समभाव था, अपने जीव की तरह ही तुमने दूसरे जीव को समझा, इसलिए अब तुम मनुष्य योनि में मेघकुमार बने हो।

महावीर स्वामी की बात सुनकर मेघकुमार को अपने पूर्व जन्म की सारी बातें याद हो आईं।

इसके बाद भगवान महावीर ने कहा—मेघकुमार, जिस रास्ते पर चल पड़े हो, उससे पीछे लौटना ठीक नहीं। तुम यह मत समझो कि तुम्हें लोगों के पैरों के पास सोना पड़ता है तो इसमें तुम्हारा अपमान है। लोग तुम्हें आदर नहीं देते हैं, तो यह भी बुरा मानने की बात नहीं। अभी तो तुम साधना कर रहो हो, तपस्या कर रहे हो। साधना और तपस्या इसीलिए की जाती है कि समभाव पैदा हो सके। तुम सम्मान-अपमान, बुराई,-भलाई, उपकार-अपकार सबको समान मानो। इसकी सिद्धि कर लोगे, तो तुम्हारा अज्ञान दूर हो जावेगा।

मेघकुमार को सही ज्ञान मिल गया था। वे साधना में लगे रहे और एक दिन वे भी पूज्य बन गए।

चण्ड कौशिक का उद्धार

जिन दिनों महावीर स्वामी संन्यासी (श्रमण) के रूप में विहार कर रहे थे, उन्हीं दिनों की बात है कि वे घूमते-घूमते एक बार श्वेताम्बिका नामक एक नगरी में जा पहुँचे। वहाँ कुछ दिन बिताने के बाद महावीर स्वामी एक जंगल की राह कहीं दूसरी जगह जाने लगे। लोगों ने जब सुना कि महावीर श्रमण जंगल के रास्ते जायेंगे तो वे भयभीत हो गए क्योंकि उस जंगल में चण्ड कौशिक नाम का एक भयंकर सर्प रहता था। चण्ड कौशिक किसी को भी छोड़ता नहीं था जो उस जंगल की राह जाये। उसका विष इतना भयंकर था कि किसी को दूर से देख कर ही वह विष उगलना शुरू कर देता था और उस विष की गर्मी से मनुष्य और पशु मर जाते थे। किसी को काटने की तो उसे जरूरत ही नहीं पड़ती थी। अब तक अनेक अनजाने राहगीर और पशु मारे जा चुके थे।

जब महावीर स्वामी को लोगों ने मना किया तो उन्होंने उनकी बात नहीं मानी। उनका ध्येय ही था कि बाधाओं और विघ्नों से हटना नहीं चाहिए। साहस के साथ उन विघ्नों को सहना चाहिए। यही सच्ची तपस्या

है। महावीर स्वामी उसी जंगल की राह चल पड़े जिसमें वह भयंकर विषधर चण्ड कौशिक रहता था।

महावीर स्वामी को जब तक चण्ड कौशिक तक पहुँचने में कुछ समय लगेगा, तब तक आइए हम चण्ड कौशिक के पिछले जन्म की कहानी देख लें कि चण्ड कौशिक कौन था और वह किस प्रकार भयंकर सर्प बना।

किसी जंगल में एक मुनि रहते थे। एक बार बरसात के दिनों में वह अपने शिष्य के साथ कहीं जा रहे थे। चारों ओर बादल छाए थे और धरती पर पानी ही पानी पड़ा था। मेंढक टर्र-टर्र कर रहे थे। बड़े-छोटे मेंढक इधर-उधर फुदक रहे थे। मुनि बड़ी सावधानी से चल रहे थे फिर भी एक छोटा-सा मेंढक उनके पैरों के नीचे आ गया। पैर से दबते ही मेंढक ने एक चीं की और उसके प्राण निकल गए।

मुनि आगे बढ़ गए। उन्होंने कहा कुछ भी नहीं। शिष्य ने देख लिया था कि गुरुजी के पैर से दब कर एक नन्हा-सा मेंढक मर गया है। उसने कुछ दूर चलने पर कहा—"गुरुजी, आप असावधानी से चल रहे थे, इसलिए आपके पैर से दब कर एक मेंढक की मृत्यु हो गई है। आपको इसके लिए प्रायश्चित करना चाहिए।"

मुनि ने शिष्य की बात पर ध्यान नहीं दिया। वह आगे चलते रहे।

शिष्य ने सोचा कि उसने बेमौके गुरुजी से यह बात कह दी है। उसे यह बात तब कहनी चाहिए थी जब गुरुजी अपने स्थान पर पहुँच जायँ। इसीलिए जब मुनि अपने नियत स्थान पर पहुँच गए तो शिष्य ने फिर वही बात दुहराई- "गुरुजी, यदि आप संभल कर चलते तो वह मेंढक नहीं मरता; आपको इसके लिए प्रायश्चित करना चाहिए।"

शिष्य की बात पर मुनि ने आँखे तरेर कर उसकी ओर देखा किन्तु कहा कुछ नही।

शिष्य समझ नहीं पाया गुरुजी क्यों आँखें तरेर रहे हैं। उसने सोचा, 'शायद गुरुजी को विश्वास नहीं होता कि उनके पैर से दबकर किसी मेंढक की मृत्यु हो गई है।' इधर मुनि अपने नियत स्थान पर पहुँच कर स्नान-ध्यान में लग गए। शिष्य ने सोचा कि यह अच्छा अवसर है। अब कहने से गुरुजी पूजा के साथ ही प्रायश्चित भी कर लेंगे। यही सोच कर उसने तीसरी बार कहा—"गुरुजी, मैं सत्य कह रहा हूँ, आपकी असावधानी से एक मेंढक की मृत्यु हो गई है। आपको इसके लिऐ प्रायश्चित तो करना ही चाहिए।"

अब मुनि का क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ गया। उन्होंने पास ही रखी एक भारी-सी लकड़ी उठाई। शिष्य को मारने दौड़े और बोले—ठहर, अभी बताता हूँ कि कैसे मेंढक मरा है और कैसे मैं प्रायश्चित करता हूँ।

गुरु का यह विकराल रूप और हाथ में मोटी-सी लकड़ी देखकर शिष्य भाग खड़ा हुआ । अब दृश्य यह बना कि आगे-आगे शिष्य और पीछे-पीछे हाथ में लकड़ी लिए गुरुजी । भागता-भागता शिष्य एक पत्थर के पीछे छिप गया । मुनि क्रोध में अपना विवेक खो चुके थे । वे जोश में दौड़े जा रहे थे । परिणाम यह हुआ कि वे पत्थर को देख नहीं सके । उससे टकरा गये और वही उनका प्राणान्त हो गया ।

उस मुनि ने अपने जीवन में सदा अच्छे कार्य किये थे, इसलिए दूसरे जन्म में भी वह सन्यासी ही बने । एक जंगल में कुटी बनाकर वह रहने लगे । कुटी के पास ही उन्होंने तरह तरह के पौधे लगाये । उनकी निगरानी वे बड़ी सावधानी से करते थे ।

जंगल शहर से अधिक दूर नहीं था और मुनि की कुटिया जंगल के एक किनारे शहर की ओर ही थी । कभी-कभी शहर वाले मुनि के पास आ जाया करते थे । उन लोगों की देखा-देखी शहर के बच्चे भी कुटिया में आने लगे । बच्चे जब कभी कुटिया में आते तो कभी-कभी मुनि के बगीचे में भी चले जाते थे ।

एक दिन कुछ बच्चों की टोली कुटिया में चली गई । उस समय मुनि कुटी से कुछ दूर पौधो की सिंचाई कर रहे थे । बच्चों ने उन्हें कुटी में नहीं देखा तो वे आजादी से बगीचे

में घूमने लगे। बच्चों की धमा-चौकड़ी देखकर मुनि को क्रोध आ गया। उन्होंने दूर से ही उन्हें डाँटा। बच्चों ने मुनि की आवाज सुनी तो सहम गए, शोर-गुल बन्द कर दिया किन्तु बगीचे से वे गए नहीं। इस पर मुनि वहाँ आ गए और डांटकर बच्चों को भगा दिया।

बच्चे भाग तो गए किन्तु ज्योंही मुनि बगीचे से कुटी में गए, वे फिर आ गए। यह देखकर मुनि को क्रोध आ गया। उन्होंने बच्चों को दूसरी बार भी भगा दिया।

अब बच्चों ने भी जिद पकड़ ली। मुनि को क्रोध करते देख उन्हें मजा आ गया। वे तीसरी बार बगीचे में घुस पड़े।

छोटे बच्चों की यह शैतानी और ढिठाई देखकर मुनि को भारी क्रोध आया। उन्होंने तय किया कि वे बच्चों को अब की बार दूर खदेड़ आयेंगे और अगर कोई पकड़ में आ गया तो इस उदण्डता का मजा भी चखायेंगे। यही सोचकर मुनि ने हाथ में एक डण्डा लिया और बच्चों को मारने दौड़ पड़े। बच्चे भाग पड़े। वे भागते जाते थे और मुड कर देखते जाते थे कि देखें मुनि पीछे आ रहे हैं या चले गए। मुनि ने भी क्रोध के कारण उन्हें मारने की ठान ली थी। उस समय भयंकर क्रोध आ रहा था उन्हें। क्रोध के कारण वे पागल की तरह उन बच्चों के पीछे दौड़ रहे थे। रास्ते में बच्चों को घेरने के लिए वे सीधा रास्ता

बदलकर घास-फूस की ओर से चल पड़े। वहाँ एक कुआं था जो घास-फूस से ढके रहने के कारण दिखाई नहीं देता था। क्रोध में बावले मुनि उसी कुवें में जा गिरे और उनकी मृत्यु हो गई।

मुनि का नाम था चण्डकौशिक। अब की बार उन्हें सर्प का जन्म मिला। चूंकि मरते समय वे भयंकर क्रोध में थे, इसलिए वे सर्प भी बड़े विषैले बने।

यही सर्प था यह चण्डकौशिक। अब हम आते हैं पहिले की कहानी पर।

चण्ड कौशिक ने जब देखा कि एक आदमी उसकी बिल की ओर ही आ रहा है तो उसे बड़ा क्रोध आया। यह बिल के बाहर बैठकर विष उगलने लगा किन्तु महावीर स्वामी बिल्कुल ही विचलित नहीं हुए। वे शान्त भाव से आगे बढ़ते रहे।

अब तो चण्डकौशिक के क्रोध की सीमा नहीं रही। तब तक महावीर स्वामी उसकी बिल के पास तक पहुँच चुके थे। उनका यह साहस देखकर चण्डकौशिक भी बिल से आगे बढ़ा और महावीर स्वामी के पैर को जोर-जोर से काटना शुरू किया। महावीर स्वामी शान्त भाव से खड़े हो गए और कुछ देर के लिए उन्होंने ध्यान लगा लिया। चण्डकौशिक प्रत्येक बार जब महावीर स्वामी

को काटता, ढेर सारा विष उगलता। विष उगलते-उगलते और काटते-काटते वह परेशान हो गया किन्तु महावीर स्वामी का कुछ नहीं बिगड़ा। उसका सारा विष समाप्त हो गया। हार कर वह एक ओर पड़ रहा।

चण्डकौशिक सोचने लगा—यह भी कैसा व्यक्ति है! मैं काटते-काटते थक गया, मेरा सारा विष समाप्त हो गया, और यह अविचल भाव से खड़ा है! उस पर मेरे विष का कोई प्रभाव नहीं! इसके चेहरे पर कैसी अलौकिक शान्ति है, कैसा दिव्य तेज है!

अब महावीर स्वामी ने अपना ध्यान तोड़ा। उन्होंने कहा—चण्डकौशिक, तू अपने को पहचान, कौन था और क्या कर रहा है!

महावीर स्वामी की बात से चण्डकौशिक को अपने पूर्व जन्म की बातें स्मरण हो आईं। साथ ही उसने यह भी जाना कि जो आदमी उसके सामने खड़ा है, वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं, वह तो स्वयं तीर्थंकर महावीर हैं।

चण्डकौशिक को अपनी गलती महसूस हुई। उसने आज एक नया पाठ पढ़ा। महावीर स्वामी अपने रास्ते चले गए किन्तु वह चण्डकौशिक का उद्धार कर गए।

अब चण्ड कौशिक ने लोगों को काटना छोड़ दिया। वह बड़े शान्त भाव से रहने लगा। धीरे-धीरे लोगों को

पता चला कि चण्डकौशिक ने अपना दुष्ट स्वभाव छोड़ दिया है तो उन्होंने अपने पशुओं को उस जंगल में फिर से चराना शुरू किया। अब लोग चण्डकौशिक को खाने के लिए दूध और भात लाने लगे।

धीरे-धीरे चण्डकौशिक ने खाना-पीना भी बंद कर दिया। अब वह एक मुनि की तरह अपनी बिल में ध्यान में रहने लगा। चीटियाँ उसके शरीर पर रेंगतीं किन्तु चण्ड-कौशिक कुछ नहीं कहता। अन्त में हुआ यह कि चीटियों ने चण्ड कौशिक का शरीर चाट-चाट कर छलनी बना दिया किन्तु चण्डकौशिक शान्त ही रहा।

मरने के बाद चण्डकौशिक अपने पूर्व जन्म के सुकर्मों और इस जन्म की तपस्या के कारण देव लोक में भेजा गया।

—·oo·—

अमृत वाणी

बोलने को तो सभी बोलते हैं, पशु-पक्षी भी बोलते ही हैं, लेकिन कुछ लोगों की बोली का जो प्रभाव दूसरों पर पड़ता है, वैसा प्रभाव सभी का नहीं पड़ता। इसीलिए कहा जाता है कि कुछ लोगों के बोलने में जादू होता है।

भगवान महावीर की वाणी में भी जादू था। जब वे बोलते थे तो सुनने वाले सुध-बुध खोकर उनकी बातें सुनने लगते थे। उनके ओठों से अमृत का झरना बहने लगता था जिससे सुनने वाला चाहे कितना भी दुखी हो, कितना भी परेशान हो, अपने सारे दुःख भूल जाता था, उसकी सारी परेशानी मिट जाती थी।

उसका भी एक कारण है। महावीर स्वामी सदा लोगों को ऐसी बातें बताते थे जिनसे सबकी भलाई हो। इसीलिए जब उनके उपदेश होते थे तो गाँव का गाँव, नगर का नगर उनके उपदेशों को सुनने के लिए उमड़ पड़ता था। उनके उपदेशों में एक खास बात यह थी कि जो कोई उनका एक शब्द भी सुन लेता था, वह पूरा उपदेश सुनने को लालायित रहता था; और जब लोग उनके उपदेशों

के अनुसार अपना जीवन बिताते थे तो उन्हें एक अनूठी शान्ति, अलौकिक सुख मिलता था।

भगवान महावीर की वाणी में कितना मिठास था और किस तरह उनके उपदेशों से लोगों का जीवन सुधर जाता था, लोग हिंसा और पाप का रास्ता छोड़कर धर्म का जीवन बिताते थे, उसके बारे में एक बड़ी रोचक कहानी कही जाती है जो इस प्रकार है:

उन्हीं दिनों की बात है जब भगवान महावीर ने ज्ञान प्राप्त कर लिया था और जगह-जगह घूमकर वे लोगों को उपदेश दिया करते थे। विहार मे ही राजगृह नाम का एक नगर था। नगर के बाहर एक पहाड़ी में शैलगिरि नाम की एक गुफा थी। उस गुफा में एक भारी क्रूर, चोर व हत्यारा रहता था। उसका नाम था लोहखुरो। अपने नाम की तरह ही वह चोर भयंकर कार्य करता था। किसी के प्राण ले लेना, किसी को लूट लेना तो उसके बायें हाथ का काम था। उसके इन दुःखदायी कारनामों से राजगृह और आसपास के लोग भयभीत रहते थे।

लोहखुरो के एक लड़का था जिसका नाम रखा था उसने रोहिणेय। बाप की शिक्षा और संगति के कारण रोहिणेय भी चोरी डकैती का काम करने लगा और जब रोहिणेय जवान हो गया तो लूट-मार में वह अपने बाप से भी आगे बढ़ गया। उसे दो खड़ाऊँ भी ऐसी मिली थीं

जिन्हें पहन लेने पर वह कहीं भी जा सकता था, कोई उसे देख नहीं सकता था। इन खड़ाउओं को प्राप्त करने के लिए रोहिणेय ने अनेक तंत्र-मंत्र सिद्ध किये थे।

जब लोहखुरो काफी बूढ़ा हो चला और अन्त में एक दिन उसके मरने का समय आया तो उसने अपने बेटे रोहिणेय को अपने पास बुलाया। बड़े स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए लोहखुरो ने कहा—"बेटे, मुझे इस बात से बड़ी खुशी है कि तुमने हमारे काम को अच्छी तरह संभाल लिया है। अब मैं थोड़ी देर का मेहमान हूँ; किन्तु तुम्हें आखिरी नसीहत दे रहा हूं। इसे ध्यान से सुनना और इसका पालन करना।"

इसके बाद लोहखुरो ने कहा- देखो, आजकल महावीर नाम का एक संन्यासी जगह-जगह घूम कर लोगों का उल्टी-सीधी बातें बताया करता है। वह भारी ढोंगी है। लोगों से कहता है कि किसी को सताओ मत, चोरी मत करो, झूठ न बोलो। तुम्हीं बताओ बेटा, यदि सतायें नहीं, चोरी नहीं करें और झूठ न बोलें तो हमारा गुजारा कैसे हो? इसीलिए तुम्हें मैं अपनी अन्तिम सीख दे रहा हूं कि तुम भूल कर भी कभी उस महावीर नामक ढोंगी साधु की बातें न सुनना। बस, अब जाओ।"

लोहखुरो की बातों को रोहिणेय ने गुरुमंत्र मान लिया। उसने तय किया कि कभी भी वह महावीर की बातें नहीं

सुनेगा। उसके बाद वह और भी जोश से लूट-मार और मार-काट में लग गया।

एक दिन रोहिणेय किसी सेठ के घर में जब चोरी कर रहा था, तो जाग पड़ गई। घर वाले चिल्ला पड़े—"चोर, चोर; पकड़ो, भाग न जाये।" घर वालों के जग जाने और नौकर-चाकरों के इधर उधर दौड़ने से रोहिणेय घबड़ाया। वह जल्दी में सेठ के महल से बाहर भागा। घबड़ाहट और जल्दी में वह अपने खड़ाऊँ महल में ही छोड़ आया जिन्हें पहनकर वह चाहे जहां जा सकता था।

उसने सोचा कि चलकर खड़ाऊँ तो ले ली जाय, किन्तु दुबारा सेठ के महल में घुसना कठिन था। सभी जाग रहे थे। हार मानकर रोहिणेय वहाँ से चल पड़ा। काफी देर तक वह चलता रहा। उसने सोचा कि अब चल कर अपनी गुफा में आराम करना ही ठीक रहेगा, किसी और दिन सेठ के महल में घुसकर खड़ाउओं को ले लिया जायेगा।

उसने नगर से बाहर-बाहर का रास्ता लिया, ताकि कोई उसे न देख ले। अब तक सवेरा होने जा रहा था। सूरज की लाली पूरब में छा गई थी। ठंडी हवा धीरे-धीरे बह रही थी। पास ही राजगृह का राजकीय उद्यान था। वह बगीचे की ओर से ही चला। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि लोगों के झुण्ड के झुण्ड उस बगीचे की ओर चले

आ रहे हैं। उसे आश्चर्य हुआ कि आज सवेरे-सवेरे सभी नगरवासी इस बगीचे में क्यों आ रहे हैं। रोहिणेय ने एक से पूछा—"भाई, आज क्या बात है कि लोग यहां इकट्ठे हो रहे हैं?"

उस व्यक्ति ने कहा—अरे, आपको पता नहीं आज महावीर भगवान उपदेश दे रहे हैं। उन्हीं की अमृतवाणी सुनने के लिए नागरिक एकत्र हो रहे है।

यह कहकर वह व्यक्ति चला गया। इधर रोहिणेय को पिता की बात याद आई—"महावीर ढोंगी है, वह उल्टी-सीधी बातें करता है, उसकी बात कभी सुनना मत।" रोहिणेय ने झट अपने दोनों कानों में उंगलियां डाल लीं ताकि उपदेश का एक भी शब्द कानों में न पड़े और वह उद्यान के बाहर ही बाहर चलने लगा।

संयोग से ऐसा हुआ कि ठीक बाग के पास उसके पैर में एक बड़ा सा कांटा चुभ गया, चलना मुश्किल हो गया और इससे रोहिणेय के सामने विचित्र स्थिति आ गई। यदि वह कांटा निकालता है तो कानों से ऊंगली हटानी पड़ेगी और इस तरह महावीर की बात उसके कानों में पड़ेगी; और यदि कानों में से ऊंगली नहीं निकालता तो चलना मुश्किल है। ऐसी हालत में हो सकता है सेठ के नौकर उसके पीछे आ रहे हो और वे पकड़ लें। मजबूर होकर रोहिणेय ने कांटा निकालने के

लिए कानों में से उँगली निकाली। उस समय पर भगवान महावीर उपदेश दे रहे थे। हाथ हटाने ही रोहिणेय के कानों में ये शब्द पड़े—"देवता सत्य हैं, वे दिव्य हैं, वे धरती पर नहीं चलते; जब कभी धरती पर आते हैं तो उनके पैर जमीन से चार अंगुल ऊपर रहते हैं; उनके गले में सदा खिले रहने वाले फूलों की माला होती है, वे फूल कभी मुरझाते नहीं; सूखते नहीं, देवता कभी पलक नहीं मारते, उनकी आखें सदा खुली रहती हैं।"

इतने ही शब्द भगवान महावीर के रोहिणेय के कानों में पड़े। इस बीच तो उसने जल्दी से कांटे को निकालकर फिर से अपनी उंगलियां कानों में डाल ली थीं। उसने कहा—पिताजी ठीक ही कह रहे थे कि महावीर ढोंगी है। कहता है-देवता धरती से चार अंगुल ऊपर चलते हैं, वे जमीन को नहीं छूते।

रोहिणेय आगे बढ़ गया। वह अपनी गुफा में पहुँचा। आज की घटना से उसे बड़ा दुःख हो रहा था, विशेषकर इस बात स कि उसने अपने खड़ाऊँ सेठ के महल में ही छोड़ दिया। पर वह करता भी क्या! दूसरे दिन से वह दुगुने जोश से चोरी-डकैती में लग गया।

रोहिणेय का आतंक इतना बढ़ा कि सभी नगरवासी घबड़ा गये। अन्त में नगर निवासी मिलकर राजा के पास गए। उन्होंने कहा—"महाराज, आपके गद्दी पर रहते हम

सभी परेशान हो रहे हैं। रोहिणेय ने ऐसा आतंक मचा रखा है कि किसी के जानो माल की सुरक्षा नहीं। यदि आप उसे नही पकड़ सकते तो आज्ञा दीजिए हम किसी दूसरे नगर में जाकर बसें।"

नागरिकों की शिकायत पर राजकुमार ने रोहिणेय को पकड़ने का बीड़ा उठाया। नागरिक सन्तुष्ट होकर अपने घरों को लौट गए और राजकुमार ने नगर के चारों दरवाजों के पहरेदारों को बुलाकर कहा—आज रात को नगर के चारों दरवाजे खुले रहेंगे। सभी लोग बड़ी मुस्तैदी से पहरा देंगे और आधी रात के बाद जो कोई नगर में घुसे उसे पकड़ लेना है, लेकिन सावधान, यह बात पहले से किसी को नहीं बतानी है।"

उस रात नगर के सभी दरवाजे खोलकर पहरेदार सावधानी से निगरानी करने लगे। रात बीतती गई पर कोई नहीं आया। अन्त में तीसरे पहर पहरेदारों ने देखा कि एक आदमी लुक-छिप कर नगर में घुस रहा है। उन्हें शंका हुई और वे 'रोहिणेय, रोहिणेय' चिल्लाते हुए उस पर टूट पड़े। सचमुच वह था भी रोहिणेय ही। उसे तो यह देखकर प्रसन्नता हुई थी कि आज नगर का द्वार खुला पड़ा है।

रोहिणेय के पास अब जादू की खड़ाऊँ तो थी नहीं, भागता कैसे। पर उसने हिम्मत नहीं हारी। सवेरे जब

महाराज के सामने दरबार में उसे पेश किया गया तो वह एकदम झूठ बोल गया। कहने लगा—महाराज, मैं शालिग्राम का वैश्य हूं। मेरा नाम दुर्गचण्ड है। हीरे-जवाहरातों का व्यापार करता हूं। आपके पहरेदारों ने मुझ निर्दोष को पकड़ लिया है। आप न्याय करने वाले हैं। आप ही विचार कीजिए।"

महाराज ने अपने दूत शालिग्राम भेजे कि पता लगाया जाय कि उस गांव में दुर्गचण्ड नामका कोई व्यापारी रहता है या नहीं। रोहिणेय ने पहले से ही शालिग्राम के लोगों को डरा धमकाकर यह सिखा रखा था कि अगर कभी कोई पूछताछ हो तो वे यही कहें कि दुर्गचण्ड यहां का एक प्रसिद्ध व्यापारी है। जब राजा के दूत शालिग्राम पहुँचे तो गांव वालों ने बताया कि दुर्गचण्ड उसी गांव का एक बनिया है जो दूर-दूर नगरों से हीरे—जवाहरात का व्यापार करता है।

दूतों ने जब यह बात कही तो सभी विस्मय में रह गए क्योंकि सबको ही विश्वास पक्का था कि रोहिणेय है तो यही। पर अब कोई क्या करता। महाराज ने आदेश दिया कि बन्दी को छोड़ दिया जाय।

इस बात से राजकुमार को बड़ी निराशा हुई। उन्हें भी पक्का विश्वास था कि रोहिणेय है तो यही, लेकिन

करते भी क्या। अब उन्होंने रोहिणेय से सच्ची बात उगलवाने के लिए एक नई चाल सोची।

रोहिणेय को जब छोड़ दिया गया और वह नगर से जाने की तैयारी कर रहा था तो राजकुमार उसके पास पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे–"श्रेष्ठी, हमें इस बात का दु:ख है कि आपको गलतफहमी के कारण अपमान भोगना पड़ा। आप हमे क्षमा कीजिए, और हमें तभी यह विश्वास होगा कि आपने हमें क्षमा कर दिया है जब आप आज हमारे मेहमान बनकर अपनी सेवा का अवसर देंगे।'

रोहिणेय का मन तो 'भागूं–भागूं' कर रहा था किन्तु उसने सोचा कि यदि राजकुमार की बात नहीं मानी, तो इन्हें सुबहा होगा, इसलिए उसने उस दिन राजकुमार का मेहमान बनना स्वीकार कर लिया।

इसके बाद राजकुमार ने अपने साथ ही उसे बढ़िया खाना खिलाया। सुगंधित ठण्डा जल दिया किन्तु जल में बहुत तेज शराब मिलवादी। परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए। रोहिणेय नशे में धुत्त हो गया। जब रोहिणेय पूरी तरह नशे में आया तो राजकुमार ने उसे शीशमहल में भिजवा दिया।

शीशमहल की शोभा ही निराली थी। सारा कमरा तरह-तरह के अनूठे पदार्थों से सजा हुआ था। सजधज कर रूपवती दासियां इन्तजार कर रही थीं कि कब

रोहिणेय का नशा उतरे और उससे सारी सारी बातें सच सच उगलवा ली जायें। इसके लिए राजकुमार ने उन दासियों को अच्छी तरह सिखा-पढ़ा रखा था।

तीसरे पहर जब रोहिणेय का नशा उतरा तो दासियां उसकी सेवा में जुट गईं। कोई पंखा झलने लगी, कोई उसका सिर दबाने लगी, कोई पैर दबाने लगी। सुन्दर-सुन्दर दासियों और सजे-धजे कमरे को देखकर रोहिणेय चकित रह गया। उसने सोचा ऐसा महल तो देवताओं का बताते हैं। वह कहां आ गया?

उसे चकित होते देखकर एक दासी ने कहा—आप आश्चर्य करते होंगे, कि आप कहां आ गए हैं। वास्तविकता यह है कि इस समय आप स्वर्ग में हैं। आप तो रोहिणेय हैं। आपने जो कुछ हत्या, लूट और मारकाट की है, उसका ही यह परिणाम है कि आपको स्वर्ग दिया गया है। अब तो आपको धरती पर किये अपने सारे कर्म याद आ रहे होंगे।

रोहिणेय और भी चकराया। उसने सोचा कि अपने जीवन में तो उसने सदा ही बुरा काम किया है। भला बुरे काम के लिए आज तक किसी को स्वर्ग मिला है। मन में कहा, निश्चित रूप से यह राजकुमार की चालाकी है और वह इस तरह धोखे से मुझसे सच्ची-सच्ची बात उगलवाना चाहते हैं।

इसी बीच उसे महावीर स्वामी के कहे हुए वचन याद आ गये—"देवता धरती से चार अंगुल ऊपर चलते हैं, उनकी पलकें नहीं झपतीं, उनके गले में पड़ी माला कभी नहीं मुरझाती।"

रोहिणेय ने देखा कि जो दासियाँ उसे घेरे हैं, वे तो जमीन से चार अंगुल ऊपर नहीं चलतीं, उनकी पलकें भी गिरती हैं, और उनके गले में पड़ी मालाओं के फूल भी कुछ कुछ मुरझाने लगे हैं। उसने निश्चय रूप से कहा—ये देवलोक की अप्सराएं नहीं हो सकतीं। जरूर ही मुझे जाल में फंसाने के लिए यह षड्यंत्र किया जा रहा है।

अब तो रोहिणेय पूरी तरह सावधान हो गया था। उसने कड़े शब्दों में कहा—"भला मैं क्यों रोहिणेय होता। मैं तो शालिग्राम का वैश्य दुर्गचण्ड हूँ।"

दासियों ने अनेक प्रकार से रोहिणेय को फुसलाया लेकिन वह जाल में नहीं आया। अन्त में निराश होकर राजकुमार ने उसे छोड़ दिया।

इस जाल से छूटने पर वह नगर के बाहर पैदल ही चला जा रहा था और सोचता जा रहा था कि अगर महावीर स्वामी की बात उसके कानों में न पड़ी होती तो वह दासियों को देवलोक की अप्सरायें समझकर राजकुमार के जाल में फंस गया होता। मन ही मन उसने महावीर स्वामी को धन्यवाद दिया कि उनके कारण

उसका जीवन बच गया, नहीं तो राजा उसे फाँसी की सजा दिये बिना नहीं मानता।

अब उसके मन में नया ही विचार पैदा हुआ। उसने सोचा कि यदि महावीर स्वामी की एक बात उसका जीवन बचा सकती है, तो यदि नित्य उनके उपदेश सुने तो न जाने कितना लाभ हो। उसने निश्चय किया कि अब वह नियमित रूप से महावीर स्वामी के उपदेश सुना करेगा।

उन दिनों महावीर स्वामी अभी राजगृह ही में थे। रोहिणेय अब नित्य उनके उपदेश सुनने जाने लगा। उनकी वाणी का रोहिणेय पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसे अपने से ही घृणा होने लगी। लूट-मार छोड़कर अब वह धर्म का जीवन बिताने लगा और कुछ ही दिनों में एक सच्चा संन्यासी बन गया।

●

अहिंसा परमोधर्मः

यदि यह पूछा जाय कि धर्मात्मा कौन है, तो आसानी से कोई कह सकता है कि धर्मात्मा वह व्यक्ति जो धर्म का पालन करें; किन्तु यदि यह पूछा जाय कि धर्म क्या है, तो इसका उत्तर देना कठिन हो जायेगा।

इस कठिनाई का कारण यह है कि संसार में हिन्दू, ईसाई, बौद्ध, मुस्लिम, जैन, सिख इत्यादि अनेक धर्म हैं और उनके मानने वाले एक-दूसरे के विरोधी आचरण करते हैं। देखा तो यहां तक गया है कि एक धर्म में जिस काम को करने की मनाही है, दूसरे धर्म वाले उसे आदर से करते हैं।

इसके दो-एक उदाहरण देखें

हमारे देश में हिन्दू लोग बड़ी संख्या में मन्दिरों में जाते हैं और उन मन्दिरों में रखी देवी देवताओं की मूर्तियों की श्रद्धा से पूजा करते हैं। इस प्रकार हिन्दुओं में मूर्ति-पूजा आजकल एक आम-रिवाज है और मूर्तियों को पवित्र माना जाता है। उन्हें स्वयं देवता के रूप में ही लिया जाता है; किन्तु मुस्लिम धर्म मूर्ति-पूजा का विरोधी है। मस्जिदों में भी न कोई मूर्ति होती है, न चित्र !

एक और बात देखिये

हिन्दू धर्म के मानने वाले राजपूत, जाट, कायस्थ आदि कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो खुले आम मांस खाती हैं। उनके लिए मांस खाना वर्जित नहीं है। मुसलमान, ईसाई, तथा सिख लोगों में भी मांस खाने का रिवाज है, किन्तु जैन धर्म में मांस खाना बिल्कुल मना है। जो कट्टर जैनी हैं वे तो पानी भी छानकर पीते हैं ताकि भूल से कहीं पानी में कोई कीड़ा न हो और इस प्रकार उन्हें मांस खाने का पाप लग जाय। जैन साधु तो नाक पर कपड़ा तक रखते हैं ताकि हवा में उड़ता हुआ कोई जीव उनकी सांस के साथ नाक में न चला जाय और इस प्रकार उन्हें उस जीव की हत्या का भागी बनना पड़े।

इस तरह हम देखते हैं कि संसार के धर्मों में अनेक बातें ऐसी हैं जो परस्पर विरोधी हैं। ऐसी स्थिति में यह सोचना ठीक ही होगा कि असली धर्म क्या है ?

इसके साथ ही एक सवाल और है: धर्म को कौन चलाता है ? धर्म कुछ लोग बनाते हैं या कोई ऐसी शक्ति है जिसे ईश्वर कहा जाता है ?

हिन्द धर्म वाले कहते हैं कि उनके सबसे पुराने धार्मिक ग्रन्थ वेदों को किसी आदमी ने नहीं बनाया। वे ईश्वर के वाक्य हैं। भगवान ने मनुष्यों के लिए जो रास्ता बताया, उसी का वेदों में वर्णन है।

मुस्लिम धर्म वाले हजरत मुहम्मद के बारे में कहते हैं कि खुदा ने उनके द्वारा अपना सन्देश भिजवाया।

इसी तरह ईसाई धर्मवालों का कहना है कि ईसा-मसीह ईश्वर के पुत्र हैं और उन्होंने ईश्वर की बातें ही मनुष्यों से कहीं।

यहाँ आकर एक कठिनाई और उत्पन्न होती है: कठिनाई यह कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—दुनिया के तीन बड़े धर्मवाले–यह मानते हैं कि उनके धर्म में जो कुछ कहा गया है, वह किसी न किसी तरह ईश्वर का सन्देश है। यह मान भी लिया जाय कि प्रत्येक धर्म में जो बातें कही गई हैं, वे ईश्वर का ही कथन है, तो भी समस्या सुलझती नहीं। अब प्रश्न यह होता है कि जब सभी मनुष्यों ही नहीं, सभी प्राणियों को जन्म देने वाला ईश्वर ही है, और वह एक ही है, चाहे हिन्दू उसे 'ईश्वर' कहें, मुसलमान 'खुदा' और ईसाई 'गॉड', तो उसने अपना सन्देश हिंदुओं को संस्कृत में क्यों दिया, मुसलमानों को अरबी भाषा में और ईसाइयों को लैटिन या अंग्रेजी में ? यदि उसने एक ही भाषा में सभी को अपना सन्देश दिया होता तो धर्म के नाम पर जो आपसी झगड़े-फसाद होते आये हैं, एक धर्म वालों ने दूसरे धर्म वालों का जो खून बहाया है, वह सब नहीं हुआ होता।

इन सब बातों के ऊपर एक और बात है : यदि सभी धर्मों को ईश्वर ने ही चलाया है, तो उसने एक को दूसरे से लड़ाने का कार्य क्यों किया, उल्टी बातें क्यों कहीं ? हिन्दुओं को कह दिया कि गाय पूज्य है, उसकी पूजा करो; मुसलमानों को कह दिया कि गाय की हत्या कर सकते हैं, उसका मांस भी खा सकते हैं; किन्तु सूअर तुम्हारे लिए हराम है; और उधर ईसाइयों को छूट दी कि तुम गाय और सूअर दोनों का मांस खा सकते हो, तुम्हारे लिए कोई मनाही नही है।

ऐसी विरोधी बातों को देखते हुए कोई समझदार व्यक्ति यह मानने को तैयार नहीं होगा कि किसी भी धर्म को स्वयं ईश्वर ने अपने किसी पुत्र या दूत के द्वारा चलाया हो। वास्तविकता यह लगती है कि समय-समय पर समाज में कुछ समझदार और विवेकशील व्यक्ति हुए। उन्होंने देखा कि उनके समाज के लोग अच्छे कार्य नहीं करते, ऐसे कार्यों में लगे हुए हैं जिनसे पूरे समाज के नष्ट होने का खतरा है इसलिए उन्होंने अपने समाज के लोगों के लिए कुछ नियम बनाये, जिन्हें धर्म कहा गया।

अब हम इससे भी एक महत्त्वपूर्ण बात पर विचार करेंगे। आज संसार में जितने भी धर्म हैं उनमें मुख्य हैं— १. हिन्दू, २, मुस्लिम, ३. ईसाई, ४. बौद्ध, ५. सिक्ख, तथा ६. जैन। इन ६ प्रकार के धर्मों को भी हम दो भागों में बांट

सकते हैं : १. वे धर्म जिनका विश्वास एवं ईश्वर में है; अर्थात् जो यह मानते हैं कि ईश्वर है।

२. दूसरे प्रकार में वे धर्म हैं जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखते, अर्थात् वे ईश्वर को संसार का रचयिता नहीं हैं। पहले प्रकार के अर्थात् ईश्वर को मानने वाले धर्मों में हैं-हिन्दू–मुसलमान ईसाई–सिक्ख। जो धर्म ईश्वर को नहीं मानते वे हैं जैन और बौद्ध।

यहां आकर विचित्र बात देखने को मिलती है कि उन धर्मों में जो ईश्वर में विश्वास रखते हैं और कहते हैं कि उनके धर्म को किसी न किसी रूप में ईश्वर ने ही चलाया, मांस खाना और जीव की हत्या करना मना नहीं है; किन्तु जैन और बौद्ध धर्म वाले–यानी वे धर्म जो ईश्वर को नहीं मानते, जीव हत्या को सबसे बड़ा पाप मानते हैं। ये दोनों धर्म–जैन और बौद्ध–अहिंसा को परम धर्म मानते हैं।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि ईश्वर को मानने वाले तो उसी के बनाए दूसरे प्राणियों की हत्या करें और उसे पाप नहीं मानें; किन्तु ईश्वर को न मानने वाले सभी जीवों को बराबर समझें और हिंसा यानी किसी दूसरे प्राणी को मारने या सताने को महापाप समझें तथा अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म मानें।

यहां आकर यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि किसी भी धर्म को ईश्वर ने नहीं चलाया, बल्कि समय-समय पर

समाज के कुछ बुद्धिमान तथा विवेकशील लोगों ने ही अपने समाज के लोगों के लिए कुछ नियम बनाये ताकि वे लोग सुख-शान्ति से जी सकें और आपस में एक होकर रहें। यदि ईश्वर ने कोई धर्म चलाया होता तो वह ऐसी बात नहीं कहता कि लोग उसी ईश्वर द्वारा बनाए दूसरे प्राणियों की हत्या करें।

अब एक सवाल और उठता है कि कौन-सा धर्म सबसे अच्छा माना जाय ?

इसका उत्तर देने के पहले इस बात पर विचार करना जरूरी है कि कौन-सा धर्म ऐसा है जिसके नियमों का पालन करने से अधिक से अधिक लोगों को सुख मिलता हैं, सभी प्राणियों की सुरक्षा रहती है।

इस आधार पर इतना बेखटके कहा जा सकता है कि दोनों धर्म—जैन और बौद्ध ऐसे हैं जो अपनी अहिंसा के कारण औरों से बढ़कर हैं। धर्मों के मानने वालों में भी जो विचारवान् लोग हैं, जो समझदार और नेकदिल हैं, वे कभी यह नहीं मानते कि स्वार्थ के लिए या अपना पेट भरने के लिए दूसरे जीवों की हत्या की जाय।

अहिंसा के बारे में स्वयं भगवान महावीर ने कहा है: "अहिंसा उस दीपक के समान है जो संसार के समस्त

प्राणियों को राह दिखाता है, अहिंसा अथाह सागर में उस टापू के समान हैं, जिस पर डूबते हुए प्राणी शरण लेते हैं। संसार के सभी जीवों को अहिंसा से त्राण मिलता है, वही उनकी गति है, प्रतिष्ठा है, शरण है। अहिंसा भूखों के लिए भोजन, रोगियों के लिए औषधि है, और प्यासे जनों के लिए जल के समान है। इतना ही नहीं, अहिंसा का मंगलमय स्वरूप और भी अधिक है। सभी प्राणियों के लिए चाहे वे जलचर हों, थलचर हों, नभचर हों, उच्च कोटि के हों या कीट-पतग कोटि के हों, अहिंसा मंगलप्रद है, कल्याणकारिणी है। अहिंसा एक ऐसी शक्ति है जिससे संसार के समस्त प्राणी अपनी रक्षा पाते हैं, जीवन पाते हैं और उन्हें शक्ति मिलती है। यह एक ऐसी शक्ति है जिससे लोंगो के कष्ट मिट जाते हैं और उनके पापों का नाश हो जाता है। इस तरह प्राणियों के लिए अहिंसा अमृत है, अमृत का अक्षय भण्डार है, और हिंसा महाविष है।"

महावीर स्वामी ने अहिंसा पर सबसे अधिक जोर दिया है। पहले के तीर्थंकर यह मानते थे कि धर्म का एक अंग अहिंसा है किन्तु महावीर स्वामी ने कहा कि अहिंसा ही धर्म है। इस तरह इन्होंने अहिंसा को धर्म

का अंग नहीं माना, बल्कि अहिंसा और धर्म को एक ही चीज माना।

जैसा ऊपर कहा गया है बौद्ध धर्म भी अहिंसा को मानता है किन्तु बौद्धों की अहिंसा और जैन-अहिंसा में भारी अन्तर है। इसे समझ लेना उचित होगा।

बौद्ध धर्म के अनुसार व्यक्ति को न तो हिंसा करनी चाहिए न हिंसा का कारण या निमित्त बनना चाहिए। उदाहरण देखिए। बौद्ध धर्म कहता है कि यदि कोई बौद्ध भिक्षु भिक्षा मांगने किसी अनजाने गांव या नगर में चला जाता है और कोई उसे भिक्षा में मांस दे देता है, तो उस मांस को स्वीकार किया जा सकता है और खाया जा सकता है। ऐसा करने में भिक्षु को हिंसा का पाप नहीं लगेगा क्योंकि मांस बनाने के लिए जानवर की हत्या पहले ही की जा चुकी थी। उस हत्या का दोषी भिक्षु नहीं है। लेकिन कोई भिक्षु यदि किसी जगह भिक्षा मांगता है और वहां वाले यह जान कर कि भिक्षु मांस खाता है, इसलिए उसको देने के लिए जीव-हत्या करके मांस उस भिक्षु को देते हैं और वह खाता है, तो ऐसी स्थिति में भिक्षु हिंसा का दोषी है क्योंकि उसके लिए हिंसा की गई। इसी प्रकार बौद्ध धर्म के अनुसार यदि दो जानवर लड़ते हैं और एक मारा जाता है तो मृत

जानवर का मांस खाने में कोई दोष नहीं।

महावीर स्वामी का कहना था कि किसी प्रकार भी जीव मारना या सताना तथा मांस का सेवन करना अधर्म है। उनके पांच महाव्रतों में अहिंसा पहला है। शेष चार हैं: सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (धन दौलत जमा न करना) जिनका वर्णन आगे किया जायेगा।

अहिंसा की और व्याख्या करते हुए महावीर स्वामी ने कहा कि किसी व्यक्ति को कठोर बात कह कर या किसी व्यक्ति या प्राणी को शारीरिक कष्ट देकर भी व्यक्ति हिंसा का भागी बन जाता है, इसीलिए सच्चे अहिंसक को न तो कभी कठोर बात कहनी चाहिए, न किसी को चोट पहुँचानी चाहिए। उसी तरह मन में किसी प्रकार से किसी प्राणी के प्रति बुरे विचार रखना भी हिंसा ही है। उनके अनुसार अहिंसा का मतलब केवल इतना ही नहीं है कि किसी प्राणी का वध न किया जाय, बल्कि सच्चे अहिंसक को मन और वचन से भी अहिंसा का पालन करना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब निम्नलिखित बातों पर अमल किया जाय :

1. किसी जीव का वध न किया जाय,
2. किसी को कठोर बात न कही जाय,
3. किसी प्राणी को शारीरिक चोट न पहुँचाई जाय तथा

4. मन में किसी के प्रति बुरे विचार न रखे जायें।

महावीर स्वामी ने जीवन भर इस अहिंसा का पालन किया। उन्होंने अपने आचरण के लिए ५ समितियां बनाई थीं। पापों से बचने के लिए मन को एकाग्र करने की स्थिति को समिति कहते हैं। अहिंसा के पालन के लिए महावीर स्वामी ने जो समितियां निर्धारित कीं, वे हैं :

1. ईर्या समिति—इसका तात्पर्य यह है कि चलते समय आगे की भूमि—कम से कम दो गज तक—को साव-धानी से देखते रहेंगे ताकि कहीं ऐसा न हो कि पांव के नीचे कोई जीव आ जाय और उसकी हत्या हो जाय।

2. भाषा समिति—इससे यह तात्पर्य है कि जो कुछ बोलते हैं उस पर विचार करके ही मुंह से कुछ कहेंगे; बहुत कम बोलेंगे—केवल उतना ही जितना बोलना बहुत जरूरी हो; अशुभ बात, कड़वी बात और किसी को दुःख पहुँचाने वाली बात नहीं बोलेंगे और जब भी बोलेंगे सत्य बोलेंगे।

3. आदान निक्षेप समिति—इससे तात्पर्य है कि किसी वस्तु को उठाते या रखते समय पूरी सावधानी रखेंगे, कहीं ऐसा न हो जाय कि किसी पदार्थ को उठाते या रखते समय किसी जीव को चोट लग जाय या उसकी हत्या हो जाय।

4. एषणा समिति—इसके अनुसार उन्होंने व्रत लिया कि सदा पवित्र और दोष-रहित भोजन करेंगे, यदि किसी भोजन में मांस का प्रयोग है तो (बौद्धों के अनुसार) चाहे उसकी हत्या के निमित्त न बाने किन्तु उसे ग्रहण नहीं करेंगे।

अहिंसा के बारे में महात्मा गांधी के भी यही विचार थे। उनका भी कहना है : "···अहिंसा का मार्ग जितना सीधा है, उतना ही तंग भी, खांड़े की धार पर चलने के समान है। नट जिस डोर पर सावधानी से चलता है, अहिंसा की डोर उससे भी पतली है। जरा चूके कि नीचे गिरे। अहिंसा कोई दिखाई देने वाली चीज नहीं है, किसी को मारना तो हिंसा है ही, कुविचार मात्र हिंसा है। उतावलापन हिंसा है, झूठ बोलना हिंसा है, किसी से द्वेष रखना भी हिंसा है और किसी का बुरा चाहना भी हिंसा है, सच पूछिये तो जो वस्तु संसार के लिए आवश्यक है, उस पर अनुचित कब्जा करना भी हिंसा है।"

महावीर स्वामी के अनुसार संसार में सबसे बड़ा अधर्म या सबसे बड़ी बुराई हिंसा है। उनके विचार से उस व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है जिसमें अहिंसा का भाव न हो। वे कहा करते थे कि "अहिंसा एक ऐसा प्रकाश है जिसमें मनुष्य को अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। अहिंसक रह कर और अहिंसा व्रत का पूरा-पूरा पालन

करने से ही मनुष्य अपनी शक्तियों को जान सकता है और मोक्ष प्राप्त कर सकता है।"

अहिंसा के बारे में उनके कुछ अन्य विचार इस प्रकार हैं :

1. कोई मनुष्य कितना ज्ञानी है, इसका पता इसी बात से चल जाता है कि वह कितना अहिंसक है।
2. संसार में जितने भी जीव हैं, सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, इसलिए जैन मुनियों को प्राणी-वध का सर्वथा त्याग करना चाहिए।
3. जो व्यक्ति प्राणियों की स्वयं हिंसा करता है, या दूसरे प्राणियों द्वारा किसी अन्य प्राणी की हिंसा कराता है, या हिंसा करने वाले प्राणियों का पक्ष लेता है, वह संसार में अपने लिए वैर बढ़ाता है।

अभी तक हमने अहिंसा का वह स्वरूप वर्णन किया है जिसे महावीर स्वामी ने बताया। यहां इस बात पर विचार कर लेना उचित होगा कि जीवन में इसका कितना महत्त्व है।

संसार में प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह सुख से जिए, कोई उसे चोट न पहुँचाए, कोई मारे नहीं। इस तरह जब व्यक्ति का जीवन शान्त रहता है तो वह मन लगाकर मेहनत से कोई काम करता है जिससे उसको भी

सुख मिलता है, और उसके घर वालों को भी आराम मिलता है।

अब आप आइए एक ऐसे व्यक्ति को देखें जिसका काम ही है दूसरों को सताना, मारना-पीटना। यह तो आप भी मानेंगे कि ऐसे व्यक्ति का न तो कोई आदर करता है, न उसे स्वयं ही आराम मिलता है। जो दूसरों की बुराई करता है, उसके मन में सदा यह भय समाया रहता है कि दूसरे उससे बदला चुकाने का अवसर अवश्य ढूँढ़ते रहते हैं और कभी मौका पड़ जाये तो दूसरे लोग भी उसका बुरा करेंगे जरूर। लेकिन उस व्यक्ति को किसी भी दूसरे व्यक्ति से भय नहीं रहता जो कभी किसी का न तो बुरा करता है, न किसी का बुरा सोचता है, न किसी को कभी कोई कड़वी बात कहता है।

इस तरह जो व्यक्ति पूरी तरह अहिंसक बन जाता है, उसका जी सुखी और शान्त रहता है। अहिंसक का कोई शत्रु नहीं होता।

कहते हैं कि एक बुराई दूसरी बुराई को पैदा करती है। आपने देखा होगा कि घर में या विद्यालय में जब कोई बालक कुसंगति में पड़ कर चोरी कर लेता है तो वह इस चोरी की बुराई से बचने के लिए झूठ बोलता है। इस तरह चोरी और झूठ बोलना दो बुराइयाँ उसमें आ जाती हैं और यदि वह अपनी बुराइयों को कठोरता से

दूर नहीं करता तो ऐक के वाद एक करके वह वुराइयों का घर वन जाता है।

जिस तरह वुराई के पास वुराई आती है, उसी तरह एक अच्छाई दूसरी अच्छाई को अपने पास खींच लाती है।

उदाहरण के लिए अहिंसा को ही लीजिए। अहिंसक का लक्षण है कि वह अपने प्रति वुराई करने वालों से भी कभी वदला लेने की वात न सोचे, कभी क्रोध न करे। इस प्रकार अहिंसक वही हो सकता है जिसमें क्षमा हो, जो अपना वुरा करने वाले को भी क्षमा कर दे।

जैन धर्म में क्षमा का वहुत महत्त्व है। सभी जैनी क्षमा-पर्व मनाते हैं। वे एक दूसरे से मिलते हैं और जाने या अनजाने में हुई अपनी भूलों या गलतियों की क्षमा मांगते हैं।

दैनिक जीवन में इस क्षमा का वहुत महत्त्व है। उदाहरण के लिए आप ऐसे दो व्यक्तियों को लीजिए जो राह चलते या कहीं और भी टकरा जाते हैं। आम तौर पर ऐसी घटनाएं सड़क पर साइकिल चलाते हो जाती हैं। मान लीजिए, इस प्रकार टक्कर हो जाने पर एक कहता है—'अवे, अंधा है क्या ? दीखता नहीं,' और दूसरा भी गर्म हो जाता है—'अंधा होगा तू और तेरा वाप ! खुद टक्कर मारता है और दूसरों को गाली देता हैं तो

झगड़ा बढ़ जायेगा और जरा सी बात बढ़ कर भयंकर हो जायेगी। इस घटना का ऐक दूसरा पहलू भी है। टक्कर लगने पर यदि दोनों कहते हैं—'भाई साहब, क्षमा करना, गलती हो गई' तो मामला रफा-दफा हो जाता है और आगे भी एक दूसरे के प्रति किसी प्रकार का द्वेष नहीं रहता।

यहाँ भी यह बात विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है कि ऐसी स्थिति में यदि वह व्यक्ति क्षमा मांगे जिसकी सच-मुच गलती नहीं है तो और भी बढ़िया रहता है और उस व्यक्ति की सभी प्रशंसा ही करेंगे। हो सकता है कि यदि गलती करने वाला क्षमा मांगे तो दूसरा व्यक्ति कुछ उत्तेजित ही रहे और चाहे दबी जबान से ही कोई कड़वी बात कह दे, किन्तु जब वह व्यक्ति क्षमा मांगता है जिसकी गलती नहीं है तो गल्ती करने वाला शर्मिन्दा हो जाता है और यही उसकी गलती की सबसे बड़ी सजा है।

अहिंसा की तरह ही क्षमा भी कमजोरी नहीं है, यह वीरता का लक्षण है। जिस प्रकार कायर व्यक्ति अहिंसक नहीं बन सकता उसी प्रकार कमजोर और डरपो व्यक्ति क्षमा भी नहीं कर सकता। क्षमा शूरवीरों क हथियार है, वह दुर्बल की ढाल नहीं है। क्षमा का म ८

तभी सबसे अधिक है जब ऐसे व्यक्ति को क्षमा कर दिया जाय जिससे बड़ी आसानी से बदला चुकाया जा सकता था। अपने से जो शक्तिशाली हैं उनको क्षमा करने या जो अपने बराबर शक्तिशाली हैं, उनको क्षमा करने से लोग यह भी कह सकते हैं कि चूंकि बदला चुकाने का साहस नहीं था, इसलिए क्षमा करने का बहना लिया; किन्तु जब हम उस व्यक्ति की बुराइयों को भूल जाते हैं जो हमसे बहुत कमजोर है और उसे क्षमा कर देते हैं तो व्यक्ति को एक अलौकिक सन्तोष मिलता है, एक सुख मिलता है, और ऐसी क्षमा दूसरों को भी क्षमाशील बनने की प्रेरणा देती है।

क्षमा का महत्व सभी धर्मों में स्वीकार किया गया है। ईसाई धर्म को चलाने वाले प्रभु ईसा का जीवन भी क्षमाशीलता का एक ज्वलन्त उदाहरण है। ईसा मसीह को मौत की सजा दी गई थी, मौत भी भयंकर तरीके से। आदेश दिया गया था कि लकड़ी के खम्भे पर उन्हें लटका कर उनके हाथ-पैरो में कीलें ठोक दी जायें, वह भारी भरकम खम्भा भी ईसा मसीह को ही अपने कन्धों पर ढोकर ले जाना था। जब हत्यारे उनके हाथ-पैरों में कीलें ठोंक रहे थे और उन्हें भयंकर पीड़ा हो रही थी, तो भी उन्होंने धीरज नहीं खोया। वध-स्थल के आस-पास ईसा मसीह के भक्त-जिनमें पुरुष भी थे, महिलाएं भी

थीं—ईस घिनौने कार्य पर रो रहे थे, किन्तु ईसा मसीह भगवान से प्रार्थना कर रहे थे—'हे भगवान, तू इन लोगों को क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये कितना बड़ा कुकर्म कर रहे हैं।'

क्षमा का महत्व इस कारण भी बढ़ जाता है कि संसार में ऐसा कोई नहीं जिससे कभी न कभी कोई गल्ती नहीं हुई हो। इसका एक उदाहरण ईसा के जीवन से ही मिलता है। कहते हैं कि एक बार ईसा मसीह के पास दौड़ती हुई एक ऐसी औरत आई जिसे लोग पत्थर मार रहे थे। उन दिनों रिवाज था कि जब कोई औरत बुर काम करे और पकड़ी जाय तो उसे पत्थर मार–मार कर मार डालना चाहिए। लोगों ने कहा—'यह औरत कुक करती है, इसे पत्थरों से मार डालेंगे।"

ईसा मसीह ने लोगों से कहा—यह तो बड़ी अ बात है कि आप लोग बुरा काम करने वाले को सजा रहे है, किन्तु एक बात मैं कहना चाहूंगा कि पहला प‹ इस औरत पर वही फेंके जिसने अपने जीवन में कभी क बुराई न की हो।

ईसा मसीह की यह बात सुन कर सभी चौंक सबने अपनी–अपनी बातें याद कीं तो उन्हें याद आया उन्होंने भी कभी–कभी चाहें हल्की–सी ही बुराई क्यं हो, की है जरूर। सभी रुक गये। ईसा मसीह ने उस

कहा–"जब आप सभी लोगों ने कोई न कोई बुराई की है तो इस औरत के पीछे ही क्यों पड़े हैं ? इससे भी गल्ती हो गई, अब आगे नहीं करेगी ।"

संकोच करते हुए जब सभी चले गए तो ईसा मसीह ने उस औरत को समझाया कि अब से वह बुरे कामों को छोड़ दे और अपना जीवन पवित्रता से बिताए।

उसी क्षण से उस औरत का मन प्रफुल्लित हो गया। उसने अपनी बुराई को बिल्कुल ही छोड़ दिया।

यह घटना इस बात का प्रमाण है कि जानबूझ कर या अनजाने में गल्ती सबसे होती है। इसलिए दूसरों की गल्तियों पर क्रोध करना और उसे सजा देने की बात सोचना व्यर्थ है। सजा देने से व्यक्ति में सुधार नहीं होता। उसका मन विद्रोह कर उठता है और भविष्य में अपनी सजा का बदला चुकाने के लिए और बुरे कार्य करता है, किन्तु क्षमा एक ऐसी वस्तु है जो बुराई को जड़ से समाप्त कर देती है।

अहिंसक को अक्रोधी होना भी जरूरी है। जो क्रोध करता है, वह अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। सबसे पहली बात तो यह है कि जो क्रोध करता है, उसके मन में क्षमा नहीं होती। क्षमा होती तो उसे क्रोध आता ही नहीं। फ़िर क्रोध में आकर लोग ऐसे काम कर बैठते हैं जिनके लिए उन्हें पछताना पड़ता है। ठीक ही कहा गया

है कि क्रोध एक प्रकार का नशा है और जब वह किसी पर छा जाता है तो वह व्यक्ति उचित–अनुचित में भेद करने की शक्ति खो देता है। क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति उस गाड़ी के समान है जो ढलान में चली जा रही हो और जिसके ब्रेक और इञ्जिन दोनों ही खराब हो गए हों !

इसलिए क्रोध को एक प्रकार की हिंसा माना गया है क्योंकि क्रोधी व्यक्ति दूसरे के मन में भय उत्पन्न करता है भय से अनेक बुराइयाँ पैदा होती हैं। एक उदाहरण लीजिए; मान लीजिए घर में किसी बच्चे से बिस्तर पर स्याही गिर गई। यह भी मान लीजिए कि उसके पिता परले सिरे के क्रोधी हैं। अब बच्चे के मन में पिता के क्रोध से बचने के विचार उठने लगेंगे। वह सोचेगा कि यदि उन्हें मालूम हो गया कि स्याही उसी ने गिराई हो तो गालियों और मार की बोछार पड़ेगी। इससे बचने के लिए वह झूठ का रास्ता अपनायेगा और पूछने पर साफ इन्कार कर जायेगा—'मुझे पता नहीं स्याही किसने गिरा दी।'

इस तरह क्रोध यहां स्वयं क्रोध करने वाले का विवेक खो देता है, वहीं वह भय का वातावरण उत्पन्न करता है और रविवेक का खोना तथा भय का वातावरण दोनो ऐसी स्थितियाँ हैं जिनसे अनेक बुराइयां पैदा होती हैं।

महावीर स्वामी के अनुसार अहिंसा के दो स्वरूप है– निवृतिरूप और दूसरा प्रवृतिरूप। निवृतिरूप की अहिंसा वह है जिसमें व्यक्ति किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता, और प्रवृतिरूप की अहिंसा वह है जिसके द्वारा मनुष्य किसी मरते हुए जीव की रक्षा करता है। इस तरह अहिंसा के दो पहलू हैं, एक वह जिसमें जीव की हिंसा न की जाय और दूसरा वह जिससे जीव की रक्षा की जाय। दूसरे प्रकार की अहिंसा को दया, करुणा, आदि नामों से जाना जा सकता है।

इस अहिंसा का मतलब कायरता से नहीं है। सच्चाई तो यह है कि जो मनुष्य कायर है, वह अहिंसक बन ही नहीं सकता। अहिंसा का भाव है किसी से भी द्रोह न रखना और यदि कोई अपकार करता है तो उसके प्रति भी बदले की भावना न रखना। जो व्यक्ति उपकार और अपकार दोनों को ही समान दृष्टि से देखे, वही सच्चा अहिंसक बन सकता।

इसी प्रकार की अहिंसा का पालन भगवान महावीर ने असीम कष्ट झेलकर भी किया। उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ आईं, अनेक प्रकार क कष्ट उन्हें उठाने पड़े, किन्तु वे अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। वे कहा करते थे कि जो व्यक्ति कष्ट में धीरज खो देता है, वह अहिंसा के मार्ग पर नहीं चल सकता।

भगवान महावीर की इस वाणी का आज के संसार में अधिकाधिक प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता है। उनका यह पवित्र सन्देश आज प्रत्येक प्राणी तक पहुँचाना आवश्यक हो गया है की 'ऐ मनुष्यो, तुम्हें शान्ति तभी मिलेगी, जब तुम एक दूसरे का विश्वास करो और यह विश्वास तभी उत्पन्न होगा जब व्यक्ति-व्यक्ति अहिंसा की उपासना करे, एक दूसरे के प्रति वैर और द्रोह का त्याग करे।

अन्य शिक्षाएँ

महावीर स्वामी के जीवन का उद्देश्य न तो धन-दौलत प्राप्त करना था, न राज्य या यश; उनके जीवन का ऐक ही उद्देश्य था कि अज्ञान में पड़े लोगो को सच्चे-धर्म की रहा दिखा कर उनका कल्याण किया जाय। महावीर स्वामी की शिक्षाओं का आधार उनका मूल मंत्र है "सव्वे जीवा वि इच्छंतु जीविउं, न मरीजिऊ"—अर्थात् सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। इस तरह उन्होंने जो धर्म की शिक्षा दी उसका आधार है-'जीओ और जीने दो'। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होने कुछ रास्ते बताये जिन पर चलकर लोग अपना जीवन सुखमय विता सकते हैं और दूसरों को सुख दे सकते हैं।

उनकी पहली शिक्षा अहिंसा के वारे में हम पिछले

अध्याय में विस्तार पूर्वक पढ़ चुके हैं। इसके वाद उन्होंने सत्य पर जोर दिया। उनका कहना था कि सत्य के विना अहिंसा का पालन नहीं हो सकता और अहिंसा के विना सत्य का पालन नहीं हो सकता। अहिंसा और सत्य धर्म के दो पहलू हैं, दोनों एक ही हैं अलग-अलग नहीं।

उसके वाद उन्होंने अस्तेय का व्रत लिया। अस्तेय से तात्पर्य है 'चोरी न करना।" यहाँ यह समझने की वात है कि चोरी का तात्पर्य उसी चोरी से नहीं है जिसे आम तौर पर समझा जाता है। राह में पड़ी वस्तु उठाना भी चोरी है, दूकानदार का कम तोलना भी चोरी है, मजदूर को उचित मजदूरी न देना भी चोरी है। इसीलिए महात्मा गांधी ने घर में बने सभी कपड़े को शुद्ध खादी नहीं माना था। शुद्ध खादी के लिए यह आवश्यक था कि उसके वनाने वालों को उचित और पूरी मजदूरी दी गई हो।

महावीर स्वामी के अनुसार चोरी वहीं घुस जाती है जहां व्यक्ति अपने कर्तव्य से हटता है। इस प्रकार चीजों में मिलावट करना भी चोरी है, अच्छी चीज के नाम पर ग्राहक को घटिया चीज देना भी चोरी है। घूस लेना भी चोरी है और दूसरे की चीजें ही नहीं, उसका अधिकार हड़पना भी चोरी है।

अस्तेय के बाद भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्य को चौथा महाव्रत बताया। उनका कहना था कि ब्रह्मचर्य का पालन

सबके लिए जरूरी है—चाहे कोई साधु—सन्यासी हो या गृहस्थ। ब्रह्मचर्य की साधना के लिए उन्होंने राह बताई कि मनुष्य को खाने-पीने पर संयम रखना चाहिए और नशीले, भारी तथा स्वादिष्ट चीजों से परहेज कर शुद्ध, सादा व ताजा भोजन करना चाहिए, भोजन को इस विचार से खाना चाहिए कि जीवित रखने के लिए भोजन ग्रहण किया जा रहा है, हम इसलिए धरती पर नहीं आये हैं कि तरह-तरह के खाद्य पदार्थों से पेट को भोजन का गोदाम बनाए रखें और उस गोदाम को सदा भरा रखें।

महावीर स्वामी का स्पष्ट कहना था कि जो पुरुष ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, आत्मा को जानना चाहता है उसे शृंगार और सांसारिकता तथा चटपटे और सुस्वाद, भोजन से दूर ही रहना चाहिए। वे कहते थे कि अधिक भोजन या गरिष्ठ भोजन करने से मन में विकार पैदा होते हैं।

इसके पश्चात् उन्होंने अपरिग्रह को पांचवा व्रत माना। अपरिग्रह से तात्पर्य है ममता का त्याग, कोई वस्तु संग्रह न करना। महावीर स्वामी ने ग्रहस्थों के लिए कहा कि उन्हें आवश्यकता से अधिक किसी वस्तु का संग्रह नहीं करना चाहिए। साधुओं को किसी भी प्रकार का संग्रह नहीं करना चाहिए। साधुओं को किसी प्रकार का संग्रह करना मना है। उन्होंने कहा कि जो मनुष्य पूर्ण संयम का

पालन करना चाहता है, उसे पूरी तरह अपरिग्रही बनना पड़ेगा, उसे धन-दौलत, नौकर चाकर, सभी तरह की ममता का त्याग करना चाहिए ।

अपरिग्रह का जब और कठोरता से पालन किया जाता है तो अपने शरीर की भी ममता छोड़ देनी पड़ती है । भगवान महावीर के अनुसार सच्चा अपरिग्रही वह व्यक्ति है जिसे धन-दौलत और स्त्री-बच्चे तो क्या, अपने शरीर की भी ममता नहीं रहती ।

महावीर स्वामी देवों को मानते थे किन्तु वे यह नहीं मानते थे कि ईश्वर इस सृष्टि का कर्त्ता या बनाने वाला है या वह अवतार लेता है । उनका कहना था कि कर्मों के बन्धन का नाश कर आत्मा ही ईश्वर का रूप लेती है, यही मोक्ष या निर्वाण है । वेदों को वे प्रमाणिक नहीं मानते थे ।

मोक्षप्राप्ति के लिए भगवान महावीर ने सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र के साधन बनाये । इन्हें ही 'त्रिरत्न' कहा गया है । सम्यक् ज्ञान से तात्पर्य है सच्चा व पूर्ण ज्ञान; सम्यक् दर्शन से तात्पर्य है तीर्थंकरों में पूर्ण विश्वास रखना तथा सम्यक् चारित्र कहते हैं अपने ज्ञान के अनुसार ही जीवन बिताना ।

यहां सम्यक् चरित्र को कुछ विस्तार से समझना ठीक रहेगा । यह पाखण्ड के ठीक विरुद्ध है । पाखण्डी उसे कहते हैं जो सोचता कुछ है और लोगों को दिखाता कुछ

अर्थात् उनका आचरण व व्यवहार झूठा होता है। सम्यक् चरित्र के पालन के लिए यह नितान्त अनिवार्य है कि आचरण शुद्ध हो, उसमें कोई पाखण्ड न हो।

महावीर स्वामी ने जीवन में नैतिकता और ईमानदारी पर बहुत जोर दिया है। उनके विचार से जो व्यक्ति ईमानदारी नहीं बरतता और अनैतिक कार्य करता है, उसको न तो इस धरती पर सम्मान यश मिलता है, न परलोक में सुख। इसलिए व्यक्ति को संतोष रखते हुए नैतिकता और ईमानदारीं बरतनी चाहिए।

इसी तरह भगवान महावीर जाति-पांति के विरोधी थे। उनकी मान्यता थी कि सभी मनुष्य समान हैं। न कोई छोटा है न बड़ा; न कोई ऊंच हैं, न कोई नीच। अपने-अपने कार्यों के अनुसार ही मनुष्य छोटा या बड़ा होता है। वे भाग्य के सहारे रहने वाले नहीं थे। उनकी शिक्षा है कि मनुष्य को भाग्य का सहारा छोड़ कर पुरुषार्थ करना चाहिए और अपने साहस और शक्ति से जो कुछ प्राप्त करना चाहता है, उसे प्राप्त करना चाहिए।

महावीर स्वामी रूढियों और हठधर्मिता के भी विरोधी थे। वे कहा करते थे कि सत्य भी एक नहीं है। विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार एक ही चीज अनेक रूपों में दिखाई देती है। अन्धे मनुष्य और हाथी की कहानी में यही तो होता है। प्रत्येक अन्धा हाथी को वैसा ही मानता

है जैसा कि उसने उसे टटोल कर देखा। कान टटोलने वाला हाथी को एक छाज की तरह बताता है, सूंड टटोलने वाला मोटे रस्से की तरह तथा पैर टटोलने वाला खम्भों की तरह। उनका कहना था कि उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति सत्य को अपनी परिस्थिति और क्षमता के अनुसार ग्रहण करता है; इसलिए वह झूठा नहीं है। इसी आधार पर वे दूसरे के विचारों को भी सुनने समझने का आग्रह करते हैं। उनका कहना था कि जो व्यक्ति यह कहते हैं कि "मैं जो कहता-समझता हूं, वही सत्य है, शेष असत्य, तो वह ज्ञानी नहीं है।"

इस प्रकार भगवान महावीर ने एक ऐसा रास्ता दिखाया है जिस पर चलकर मनुष्य अपना जीवन सुधार सकता है; इस संसार में वह सम्मान और यश प्राप्त कर सकता है और परलोक में अच्छा स्थान । सा । ही वह तपस्या करके और कर्मों का बन्धन काट कर मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। महावीर स्वामी के बताये मार्ग पर चलने से आज संसार में जो अशान्ति, मारकाट, लूट-खसोट मची हुई है, वह सदा के लिए शान्त हो सकती है और सभी मनुष्य 'जीओ और जीने दो' की मंगल भावना के साथ विश्वासपूर्वक एक ऐसे मानव समाज की रचना कर सकते हैं जिसमें सभी सुख और शान्ति से रह सकें।